Chapter-4

पर्व चतुर्थ

श्री आत्मानंदजी महाराजजीकी अक्षर-देहका परिचय

मंगलाचरण—प्रस्ताविक—साहित्य परिचय—गद्यसाहित्य सारिणी, पद्य साहित्य सारिणी **बृहत् नवतत्त्व संग्रह**-ग्रन्थ विषयक—विविध द्वाराश्रयी जीवोका **स्वरूप**, पाच अजीव स्वरूप, पुण्य-पापतत्त्व, आश्रव-सवर, निर्जरा-**बध, मोक्ष तत्त्व—चौदह** गुण **स्थानक—उपशम-क्षपक श्रेणि** स्वरूप—निष्कर्ष **जैन तत्त्वादर्श**—ग्रन्थ परिचय (१) सुदेवके स्वरूपकी प्ररूपणा-चौबीस तीर्थंकर गुणादि स्वरूप (२) कुदेवका स्वरूप-ईश्वरमे ईश्वर-स्वरूपकी सिद्धि, जगत्कर्तृत्वका नीरसन निष्कर्ष (३) गुरु तत्त्व स्वरूप निर्णय [illegible] भेद (४) कुगुरु स्वरूप निर्णय-एकात (विकलाग) दर्शनोका स्वरूप और अनेकान्तकी स्थापना (५ [illegible] [illegible]मतत्त्व—स ज्ञानान्तर्गत नवतत्त्व चौदह गुणस्थानकादिका स्वरूप निर्णय स दर्शनान्तर्गत श्रद्धाके भेद, श्रद्धायुक्त सम्यक्त्वसे मोक्षलाभ—छ-चार आगारादिका स्पष्टीकरण स चारित्रान्तर्गत स्वरूप निर्णय श्रावकके पाच कर्तव्य वर्णन-निष्कर्ष(११) त्रेसठशालाका पुरुष-वृत्त निरूपण (१२) श्री महावीर स्वामीके शासनमे गुर्वावलि—निष्कर्ष **अज्ञानतिमिर भास्कर**—प्रारम्भ-<u>प्रथमखड (प्रवेशिका)</u>-ग्रन्थालेखनका प्रयोजन—श्रीदयानदजी द्वारा वेदोके स्वच्छद, मनस्वी अर्थघटन—जैनधर्मकी उदारताका स्पष्टीकरण—<u>प्रथम खड</u>—वेद रचना-स्वरूप हिंसक यज्ञ स्वरूप वेदकी अपौरुषेयताकी असिद्धि [illegible]दिक इतिहास जैनधर्म प्रभावसे ब्रह्म जिज्ञासा—शकराचार्य द्वारा वैदिक क्रियाकाडका पुनरुद्धार—अनेक सम्प्रदाय आविर्भाव—प्रचार-प्रसार,-मासाहार विषयक द्वन्द्व-वैदिक मुक्तिकी वैषम्यता-दयानद मान्य मुक्ति—ॐकारका वेदानुसार अर्थ—ॐकारमे पच परमेष्ठिकी सिद्धि- सत्यार्थ प्रकाशका स्वरूप-निष्कर्ष—<u>द्वितीयखड (प्रवेशिका)</u>—जैनधर्म (ऐतिहासिक परिचय)—जैनधर्मके प्रचार-प्रसारकी अल्पताके कारण -भ महावीरकी आतिशायी वाणी- मूर्तिपूजाके विरोधियो द्वारा ही मूर्तिपूजाकी सिद्धि-जैनधर्मके विविध गच्छ-<u>द्वितीय खड</u>—आराधकके इक्कीस गुण- वर्णन—श्रावक और साधुका—स्वरूप भावश्रावक और भावसाधु स्वरूप—भावश्रावकके क्रियागत छ- लक्षण—और भावगत सत्रह- लक्षण-भावसाधुका स्वरूप—जैन मतानुसार आत्माका स्वरूप और प्रकार निष्कर्ष— **सम्यक्त्व शल्योद्धार**—ग्रन्थरचना हेतु (मगलाचरण)—मुहपत्ती एव मूर्तिपूजा विषयक विभिन्न दृष्टि बिन्दुओसे चर्चित विविध छियालिस प्रश्नोत्तर (आगमाधारित) निष्कर्ष— **तत्त्वनिर्णयप्रासाद**-मगलाचरण-जैनधर्मकी प्राचीनता-वेदोत्पत्ति और वैदिक हिंसक यज्ञ-वेदोकी प्रार्थना रूप ऋचाये-श्रीहेमचद्राचार्यके महादेव स्तोत्राधारित ब्रह्मादि त्रिमूर्तिका स्वरूप-ज्ञानरूप त्रिमूर्तिकी सभावना स्वीकार--त्रिमूर्तिरूप 'अर्हन्'का स्वरूप 'लोकतत्त्व निर्णय'का बालावबोध और श्रीहरिभद्र सूरीश्वरजीमे द्वारा अन्य दर्शनोका समुच्चय रूप खडन ऋग्वेद-यजुर्वेदादि, मनुस्मृति, साख्यमत, ब्रह्मा द्वारा सृष्टिसर्जन विषयक प्रक्रिया का वर्णन और समीक्षा—वेदऋचाओसे वेदोकी अपौरुषेयता सिद्धि-जैनाचार्यों एव सायणाचार्य द्वारा गायत्रीमत्रके अर्थ-महत्त्व-श्रीवर्धमान सूरिजी कृत 'आचार दिनकर' ग्रन्थाधारित षोडश सस्कार वर्णन, जैनधर्मकी बौद्ध और दिगम्बर जैनोसे प्राचीनताका निर्णय—आधुनिक शिक्षितोकी विविध शकाओका अर्वाचीन सशोधन, तर्क एव आगम प्रमाणोसे समाधान शकराचार्यजीका जीवनवृत्त-प्रमाण—नय—स्याद्वाद—सप्तभगी आदिके स्वरूप—उपसहार—क्षमाप्रार्थना **जैनमतवृक्ष** —ग्रन्थ परिचय—श्रीआदिनाथसे श्रीमहावीर स्वामी एव श्रीआत्मानदजीमे पर्यंत ऐतिहासिक तवारिखका कलात्मक वृक्षाकार-चित्र (पश्चात ग्रन्थाकार) रूपमे आलेखन—**चतुर्थ स्तुति निर्णय भा-१-२**—ग्रन्थ परिचय—विषय वस्तु निरूपण—साधककी दैनिक आवश्यक क्रिया-प्रतिक्रमणमे चतुर्थ स्तुतिकी यथार्थ उपयुक्तताका अनेक आगमादि एव पूर्वाचार्यो रचित पचागी रूप विविध शास्त्र सदर्भोसे निर्णय-चतुर्विध श्रीजैनसघको योग्य मार्गदर्शन-स्वय पर किए [illegible] आक्षेपोका योग्य प्रत्युत्तर—**जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर**—ग्रन्थ परिचय-जैनधर्मके विभिन्न विषयोका आधुनिक शिक्षित जिज्ञासुओकी सतुष्टि हेतु १६३ विविध प्रश्नोत्तरोका निरूपण निष्कर्ष-**चिकागो प्रश्नोत्तर**-ग्रन्थ परिचय—विषय निरूपण—अन्यवादियोसे समन्वय—मूर्तिपूजा विरोधियोको उनके ही अनेक अनुष्ठानोमे मूर्तिपूजा (स्थापना निक्षेपा) के स्वरूपका स्पष्टीकरण-जैन सिद्धान्तोकी विश्वस्तरीय उपादेयता-श्रावक एव साधुधर्मका सक्षिप्त विवरण—**ईसाई मत समीक्षा**—ग्रन्थरचना प्रयोजन-जैनधर्मकी विशिष्ट धर्माराधना-ईसा मसीहके जीवन प्रसगोसे उनके देवत्वका इन्कार विविध ईसाई धर्मग्रथोकी प्ररूपणाका विश्लेषण-शुद्ध धर्माराधनसे आत्मकल्याणकी अपील-**जैनधर्मका स्वरूप**—**प्रश्नोत्तर-नवतत्त्व (सक्षिप्त)**—**पद्यरचनायें**-परिचय-नामोल्लेख-**सारांश**

ॐ ह्रीँ अर्हम् नमः

पर्व चतुर्थ

-ः श्री आत्मानन्दजी महाराजजीकी अक्षरदेहका परिचय ः-

"योगाभोगानुगामी द्विजभजनजनि शारदारक्तिरक्तो,
दिग्जेताजेतृजेतामतिनुतिगतिभिः पूजितोजिष्णुजिष्वैः।
जीयाद्दायादयात्री- खलबलदलनो लोललीलस्वलज्जः,
केदारोदास्यदारी विमलमधुमदो द्दामधामप्रमत्तः॥" [१]

साहित्य परिचय–

विद्वानोंके विचारोंसे दार्शनिक सिद्धान्त और धार्मिक आचार मध्य पार्थक्य माना गया है, जबकि कई विद्वान इन दोनोंकी दिखाई देनेवाली भिन्नताको, जीवन व्यवहारमें व्यवस्थित रूपसे, परस्पर अंतर्भूत करके क्षीर-नीरवत् अभिन्न स्वरूपको प्रदर्शित करते हैं। जैनधर्म और दर्शनका ऐसा ही क्षीर-नीरवत् स्वरूप हमें जैन संस्कृति-समाज-साहित्यका निदर्शन करने पर दृष्टिगोचर होता हैं।

संविज्ञ शाखीय आचार्य पू. श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.सा. जैन साधु थे। यही कारण हैकि आपके साहित्योद्यानमें वैविध्य सभर, आत्मिक तुष्टि-पुष्टिकारक, जीवनप्रदायी, आह्लादक, सुरभि कुसुमोंसे अलंकृत प्रत्येक कृति बेलोमें जैनत्वकी ही सुवास महकती है। इस साहित्योद्यानकी एक-एक कृतिबेलिका परिचय, वैविध्यता और वैचित्र्यताके वैभविक रसथाल स्वरूप आत्म संतुष्टिकारक पीयूषपान करवाता है। कहीं पर समाज रूपी ठोस मिट्टीमें भ्रांत बनकर तबाह होनेपर तुले हुए दार्शनिक सिद्धान्तरूपी मूलोंको अमृतमय सिंचनसे पुनःदृढ़ीभूत बनानेके प्रयास हैं, तो कही जैन संस्कृतिके आचारोंकी दुरुस्ती-जीर्णोद्धार और नव्यरूप प्रदानका प्रयास दृष्टिगोचर होता है। *"जैन तत्त्वादर्श"* जैसी भव्य कृतिमे इन दोनोके सामजस्यके दर्शन होते हैं।

"आवश्यकता ही आविष्कारकी जननी है"- इस लोकोक्तिको चरितार्थ करनेवाली इन कृतिबेलोसे शाश्वत जैन धर्मके दार्शनिक सैद्धान्तिक और आध्यात्मिक एव तत्कालीन धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक नैतिक आदि पुष्प परिमल महक रहा है।

गद्य साहित्य सारिणी—

आपके पट्ट विभूषक और चरणानुगामी-अंतेवासी प पू. श्रीमद्विजयवल्लभ सुरीश्वरजी म सा. द्वारा विरचित जीवनवृत्त-*'नवयुग निर्माता'*-के परिशिष्ट-२मे इन कृतियोकी सारिणी

प्रस्तुत की गई है। इसके अतिरिक्त '*श्री न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंद सूरि*'- ले.श्रीपृथ्वीराज जैन, एवं मुनिश्री नविनचंद्रवि.म. कृत "*श्रीमद्विजयानंद सूरिः जीवन और कार्य*-"आदिमें भी प्रायः इसी सारिणी पर आधारित कृति सारिणी पेश की है-जो निम्नलिखित रूपमें प्राप्त होती है---

नं.	गद्यकृति	आरम्भ		सम्पन्न	
		समय	स्थान	समय	स्थान
१	बृहत् नवतत्त्व संग्रह	ई.स.१८६७	बिनौली	ई.स.१८६८	बड़ौत
२	जैन तत्त्वादर्श	ई.स.१८८०	गुजरांवाला	ई.स.१८८१	होशियारपुर
३	अज्ञान तिमिर भास्कर	ई.स.१८८२	अंबाला	ई.स.१८८५	खंभात
४	सम्यक्त्व शल्योद्धार	ई.स.१८८४	अहमदाबाद	ई.स.१८८४	अहमदाबाद
५	जैन मत वृक्ष	ई.स.१८८५	सूरत	ई.स.१८८५	सूरत
६	चतुर्थ स्तुति निर्णय-भा-१	ई.स.१८८७	राधनपुर	ई.स.१८८७	राधनपुर
७	चतुर्थ स्तुति निर्णय-भा-२	ई.स.१८९१	पट्टी	ई.स.१८९१	पट्टी
८	श्री जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर	ई.स.१८८८	पालनपुर	ई.स१८८८	पालनपुर
९	चिकागो प्रश्नोत्तर	ई.स.१८९२	अमृतसर	ई.स.१८९२	अमृतसर
१०	तत्त्व निर्णय प्रासाद	ई.स.१८९४	जीरा	ई.स.१८९६	गुजरांवाला

११ ईसाई-मत-समीक्षा

१२ जैन धर्मका स्वरूप

१३ आत्म-वीर-ग्रन्थमाला अन्तर्गत ग्रन्थांक-३ "प्रश्नोत्तर संग्रह" (डॉ.होर्नलके प्रश्नोंके उत्तर) संकलन-पू.श्री भक्तिविजयजीम.सा.; प्रका.श्री जैन आत्म-वीर सभा-भावनगर ई.स.१९१५।

१४ नवतत्त्व (संक्षिप्त)

	पद्यकृतियाँ	समय	रचना स्थान
१	श्री आत्मबावनी (उपदेशबावनी)	ई.स. १८७०	बिनौली
२	श्री आत्मानंद जिन चौबीसी	ई.स. १८७३	अंबाला
३	सत्रहभेदी पूजा	ई स १८८२	अंबाला
४	बीस स्थानक पूजा	ई स १८८३	बिकानेर
५	अष्ट प्रकारी पूजा	ई.स १८८६	पालीताना
६	नवपदजी पूजा	ई स १८९१	पट्टी
७	स्नात्र पूजा	ई स १८९३	जडियाला गुरु

८ आत्म विलास स्तवनाली ई स १९१३ प्रका' सुमेरमलजी सुराणा-श्री आत्मानद सभा-भावनगर (२४ तीर्थंकर एव विविध तीर्थस्तवन, बारह भावना, फूटकल पदादि सग्रह)

---बृहत् नवतत्त्व संग्रह---

ज्ञानार्जनके एकमात्र लक्ष्यको लक्षितकर्ता पू. आत्मानंदजी म.सा.की संयमपालनाके सत्रहसाल पर्यंत ज्ञानाराधना पश्चात् चिन्तन-मनन रूप रवैयासे बिलोडनानन्तर प्रथम कृति- जैनधर्मके प्रमुख नवतत्त्वोंकी सैद्धान्तिक संकलना "नवतत्त्व संग्रह"-जैसे नवनीत रूपमें प्राप्त होती हैं।

"शुद्ध ज्ञान प्रकाशाय, लोकालोकैक भानवे;

नमः श्री वर्धमानाय, वर्तमान जिनेशिने।" [२]

ग्रन्थ विषयक प्ररूपणा---लोकालोकके एकमात्र सूर्यसमान, शुद्ध ज्ञानके प्रकाशकर्ता, वर्तमान जिनेश्वर श्री वर्धमान स्वामीको नमस्कार करते हुए, मंगलाचरणसे ग्रन्थका शुभारंभ होता है। जैसे ग्रन्थ शीर्षक-'*नवतत्त्व संग्रह*'-से ही फलित होता है कि इस ग्रन्थमें कर्ताने जीव, अजीव पुण्य,-पाप, आश्रव,-संवर, निर्जरा,-बंध और मोक्ष-इन नवतत्त्वोंका आगमाधारित एवं पूर्वाचार्योंके संकलनोंसे निर्णीत तात्त्विक तथ्योंकी विस्तृत प्ररूपणा करनेका प्रयत्न किया हैं। आपहीने ग्रन्थकी समाप्तिके अंतिम मंगलाचरण करते हुए उल्लिखित किया है कि,

"आदि अरिहंत वीर पंचम गणेश-धीर भद्रबाहु गुरु फिर सुद्ध ग्यान दायके,

जिनभद्र हरिभद्र हेमचंद देव इंद अभय आनंद चंद चंदरिसी गायके,

मलयगिरि श्री साम विमला विज्ञान धाम ओर ही अनेक साम रिदे वीच धायके;

जीवन आनंद करो सुखके भंडार भरो आतम आनंद लिखी चित्त हुलसायके।"...........

"जैसे जिनराज गुरु कथन करत घुरु तैसे ग्रन्थ सुद्ध कुरु मोपे मत धीजीयो" ....

"......................गुरुजन केरे मुख थकी, लहि सो तत्त्व तरंग"। [३]

इससे स्पष्ट हैं कि आपकी यह रचना-प्ररूपणा-पूर्वाचार्योंके लगाये बेल-बूटोंके सुंदर सुफल हैं, साथ ही ग्रंथरचनाके काल-कारण और स्थानको इंगितकर्ता यह श्लोक भी दृष्टव्य है-

"ग्राम तो बिनोली नाम लाला चिरंजीव श्याम भगत सुभाव चित्त धरम सुहायो है।.........

संवत तो मुनि कर अंक इन्दु मंख धर कार्तिक सुमास वर तीज बुध आयो है।" -[४]

संदर्भ ग्रन्थ-- इस कृति विन्यासमें आपने श्रीभगवती सूत्र, श्रीनंदीसूत्र (श्री मलयगिरि म.-कृत) नंदीसूत्रवृत्ति, श्रीअनुयोगद्धार, श्रीअनुयोगद्धारवृत्ति, श्रीप्रज्ञापना, श्रीउत्तराध्ययन, श्रीआचारांग, श्रीसमवायांग, श्रीस्थानांग, श्रीआवश्यक, श्रीआवश्यक निर्युक्ति, श्री आवश्यक भाष्य, श्रीसिद्धप्राभृत टीका, ओघनिर्युक्ति, पिंडनिर्युक्ति आदि आगम सूत्रो एव गोम्मट सार, पचसंग्रह, सप्ततिसूत्र, शतक कर्मग्रन्थ, पिंड विशुद्धि, लोकनालिका बत्तीसी, ध्यानशतक, कर्मग्रन्थ, प्रवचन सारोद्धार आदि ग्रन्थ रत्नोके आलोकमे परीक्षित सत्य सिद्धान्तोकी प्ररूपणा की गई हैं।

जीवतत्त्व--- सैद्धान्तिक एव तात्त्विक संकलनोके इस बृहत् ग्रन्थमे प्रमुख रूपसे जीव-अजीवादि नवतत्त्वोंके विस्तृत विवरणमे 'जीव' तत्त्वको प्रधानता दी गई है, अतः प्रथम 'जीवतत्त्व' प्रकरण द्वारा ११७ पृष्ठोमे ७९ यत्र एवं तालिकाये देकर (आगमिक एव

शास्त्रीय उद्धरणोंको लेकर) जीवाश्रयी भेद, आयुष्य, अवगाहना, गुण स्थानक, आदि अनेक द्वारोंसे अनेक संलग्न विषयोंका उद्घाटन किया गया है। जीवही सर्व तत्त्वोंका आवरक है। जीवतत्त्वके कारण ही, अजीवादि आठों तत्त्वोंके परिचय प्राप्तिका अवसर उपलब्ध होता है। इस प्रकरणमें जीवके भेदादिका निरूपण किया है उसे संक्षिप्त रूपमे निवेदित करते हैं।

जीवके भेद---चार गति आश्रयी जीवके ५६३ भेद बताये हैं- नारकीके-१४ (पर्याप्ता-७+ अपर्याप्ता-७); तिर्यंच-४८ (एकेन्द्रिय--२२+विकलेन्द्रिय-६+तिर्यंच पंचेन्द्रिय-२०); मनुष्य-३०३ (ढाईद्वीपके सर्वक्षेत्रोंके-१०१ प्रकारके १०१ गर्भज पर्या.+१०१ गर्भज अपर्या.-+१०१ सम्मूर्छिम); देव-१९८ (भुवनपति-व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक-कुल-९९ पर्या.-+९९ अपर्या.)

संख्या--प्रत्येक दंडकके कितने जीव? (वनस्पतिकाय-अनंत, मनुष्यके असंख्यात अथवा संख्यात और अन्य जीव असंख्यात) इसका निरूपण किया है।

जीवोंकी गति-आगति, वृद्धि-हानि-अवस्थिति, अवगाहना, स्थिति (आयुकाल), चार कषाय-स्वरूप; योग-१५--(मनयोग-४, वचनयोग-४, काययोग-७); *क्रिया*-सावद्य क्रियासे कर्मबंधका स्वरूप, *लेश्या*-(जीवके परिणाम)-लेश्याओंके वर्ण-गंधादि द्वारोंसे छ लेश्याओंका निरूपण; *स्थान*-जीवके स्वस्थान, उपपात-समुद्घात आदिके स्थान-समुद्घातके सात प्रकार, अधिकारी जीवोंकी जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति; *संज्ञा*--आचारांगाधारित सोलह संज्ञा एवं आहारादि चार संज्ञा; *सांतर-निरंतर*-एक समयमें किस गतिमें कितने जीवोंकी एक साथ उत्पत्ति; *शरीर*-पांच प्रकारके-उसके स्वामी, संस्थान, अवगाहना, पुद्गल चयन, परस्पर संयोगादि; *योनि*-८४लक्ष जीव-योनिमेंसे किस गतिमें किन जीवोंकी कितनी योनियाँ हैं-इसकी विवेचना एवं संवृत्त-विवृत्त आदि योनियोंके बारह भेद; *संघयण*-छ प्रकारके संघयणका स्वरूपोल्लेख-स्वामी और संघयण रहित जीवोंका वर्णन; *संस्थान*-छ प्रकारके संस्थानोंका स्वरूप-रचना-स्वामी; *उत्पत्ति*---विभिन्न करणीके कर्ता जीवकी उत्पत्ति; *आहार-अनाहार*--जीव कहाँ-कब आहारी या अनाहारी होते हैं। *जीवका सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, मिश्र या औधिक पना*, आदिका परिचय देते हुए ज्ञानका वर्णन किया हैं। *ज्ञानद्वार*---जीवमें ज्ञानाज्ञानकी स्थितिकी संभावना, पांचज्ञानके भेदोपभेद (मतिज्ञानके कुल-२८ अथवा ३३६ उपभेद और नव द्वारसे विवरण; श्रुतज्ञानके चौदहभेद, अवधारणके आठ और शास्त्र श्रवण विधिके सात प्रकार; अवधिज्ञानके सामान्यतः छभेद और असंख्य या अनंत भेद भी होते हैं उसका पंद्रह द्वारोसे विवरणान्तर्गत नामादि सात प्रकार, जघन्य-उत्कृष्टक्षेत्र, संस्थान, अनुगामी-अवस्थित-चल अवधि, तीव्र-मदता, प्रतिपाति-अप्रतिपाति अवधिके लक्षण, ज्ञान-दर्शन-विभंग द्वारा विभिन्न जीवोके अवधि ज्ञानमे सादृश्य-वैशिष्ट्य, सर्व या स्वल्पता, सबद्ध-असंबद्ध अवधिज्ञानीका क्षेत्र, गत्याश्रयी जीवोके अवधिकी लब्धि और कुल अट्ठाईस लब्धियोका स्वरूप; मनःपर्यवज्ञानके दोभेद-ऋजुमति, विपुलमति-उसके अधिकारी; और केवलज्ञानका वर्णन), 'अनुयोग द्वार' और 'गोम्मटसार' आधारित पल्योपम-सागरोपमका स्वरूप, वर्गशलाका, सख्यात

-असंख्यात-अनंतका स्वरूप निरूपण किया गया हैं। *इन्द्रिय द्वार*---पांच इन्द्रियके बाह्याभ्यन्तर भेदोंके संस्थानादि द्वारोंसे विवेचन और द्रव्येन्द्रिय या भावेन्द्रियोंकी लब्धि-उपयोगादिकी स्पष्टता *श्वासोच्छ्वास, द्रव्यप्राण-भावप्राणके भेद, आठ प्रकारकी आत्मा, पांच प्रकारके देवोंकी गति-आगति*-विकुर्वणा-लब्धि-कायस्थिति-अवगाहनादिका वर्गीकरण, *पर्याप्ति*-(आत्मिक शक्ति) पर्याप्त-अपर्याप्तके भेदोका वर्गीकरण, पर्याप्ति प्राप्तिकी योग्यता, *आहार*---सचित्त-अचित्त-मिश्र और ओज-रोम-कवल एवं आभोग-अनाभोग तथा मनोज्ञ-अमनोज्ञ आदि आहारके भेद, गति---स्थानाधारित आहार स्वरूप और अंतमे मिथ्यात्व-सास्वादन-मिश्र-अविरत सम्यक्‌दृष्टि-देश विरति-प्रमत्त संयत-अप्रमत्तसंयत-निर्वृत्ति बादर (अपूर्वकरण)-अनिर्वृत्ति बादर (अनिर्वृत्तिकरण)-सूक्ष्मसंपराय, -उपशांत मोह,-क्षीण मोह-सयोगी केवली-अयोगी केवली-इन चौदह गुणस्थानक (अनादि अनंतकालीन निगोदके अव्यवहार राशिमें जीवके अत्यधिकतम निकृष्ट स्वरूपसे संपूर्ण शुद्ध निर्मलतम स्वरूप पर्यंत क्रमसे विशुद्धतर गुणप्राप्ति) पश्चात् जीवकी स्थिति-स्थानके विशिष्ट वर्णन, भेदोपभेद, स्वरूप, स्वामी-स्वामीके लक्षण या गुणादिका वर्णन करते हुए उन गुणस्थानकाश्रयी जीव, योग, उपयोग, ज्ञान, लेश्या, हेतु, भाव, कर्म, प्रकृति, उसके बंध-हेतु-उदयादि नानाविध जीवके आनुषंगिक विषयोंका १६२ द्वारोंसे, ७९ यंत्रोंसे एवं पंचसंग्रह, कर्मग्रन्थादि अनेक शास्त्रोंकी शास्त्रीय साक्षियोंके अवलम्बनसे सूक्ष्म निरूपण करके इस प्रकरणको पूर्ण किया है।

अजीवतत्त्व---विभिन्न अं- पुद्गल परमाणुके भंगादिकों स्पष्ट करनेवाले इकतीस चित्रोंसे सुशोभित द्वितीय अजीवतत्त्व प्रकरणका प्रारम्भ अजीवके मुख्य भेदोंके यंत्र-वितरणसे किया गया है। जिसके अंतर्गत धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल-इन पाँच अजीव तत्त्वोंका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और गुण-इन पाँच द्वारोंसे सामान्य परिचय करवाया गया हैं। तत्पश्चात् प्रथम तीन अजीव द्रव्योंको छोड़कर शेष दोका विशिष्ट विवरण दिया हैं। जिसमें पुद्गलास्तिकायके स्वरूप निरूपणमें स्कंध-देश-प्रदेश-परमाणुके संबंधमें सत्पद, द्रव्य, क्षेत्र, स्पर्शना, काल, अंतर, भाग, भाव, अल्पबहुत्वादि द्वारोंसे प्रथम (आदि-मध्यम-अंतवाले) आनुपूर्वी, (आदि-मध्य-अंत रहित) अनानुपूर्वी एवं (केवल आदि-अंतवाले-मध्य रहित)अवक्तव्य स्कंध स्वरूपको स्पष्ट किया है। व्यवहार नयसे लोकस्वरूपका (चौदह राजलोकके प्रतर-प्रदेशाश्रयी संपूर्ण स्वरूपाकृति लोक और अलोकमें श्रेणियाँ; दश दिशायें-उनका उद्भव-संस्थान-आयाम-द्रव्य-प्रदेशादि द्वारोंसे स्पष्टीकरण; लोक-अलोक-लोकालोकके चरम-अचरम-चरमाचरम खंडोका स्वरूप निरूपण) परमाणु पुद्गलके एक-दो-तीन आदि प्रदेश आश्रयी छव्वीस भंगोंका (प्रकार) भिन्न भिन्न चित्राकृतिसे आलेखन; क्षुल्लक प्रतर, रुचक प्रदेशादिको समझाते हुए जीव-कर्म सहित संसारी, कर्म रहित सिद्ध---और अजीवकी स्थिति; दशो दिशा और लोकमे अजीवके चरमातोका स्पर्श-इ-। सबको यंत्र-तालिका-चित्राकृतियोसे स्पष्ट किया है। पुद्गलके सद्भाव-असद्भावके भग, द्रव्य-द्रव्यदेशके भग, परमाणु पुद्गलकी प्रदेश स्पर्शना पुद्गलके संस्थान स्वरूपके चित्र एवं यंत्रसे आलेखन, जीवके मरणोपरान्त अन्य स्थानमे उत्पन्न होनेके लिए अपातराल गतियोके ऋजु-वक्रादि प्रकारोको

भगवती सूत्राधारित विवरित किया है।

तत्पश्चात् पांचो अस्तिकायके परस्पर स्पर्शनादिकी प्ररूपणा हुई है। परमाणु एवं पुद्गल स्कंधोंके अल्प-बहुत्व, चल-अचल स्थिति, अंतर, कालमान, संख्यात-असंख्यात-अनंतादिका स्वरूप यंत्रोंसे स्पष्ट करते हुए अंतमें कालकी अपेक्षा अल्प-बहुत्व; षट्-द्रव्यके नित्यानित्य, पर्याय, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, संस्थान एवं पुद्गलके तीन प्रकारके बंधोका स्वरूप दर्शाया है।

पुण्यतत्त्व---यंत्र एवं समवसरणके चित्र सहितपुण्य कर्मबंधके नव एवं कर्मविपाक याने पुण्य भोगनेके बयालीस प्रकार नाम-निक्षेपसे प्रस्तुत करके उत्कृष्ट पुण्य प्रकृति-तीर्थंकर नामकर्म-की स्थितिका स्वरूप (यहाँ समवसरणका परिचय)और उनसे कम पुण्यवान बारह चक्रवर्ती, नव-नव प्रतिवासुदेव, वासुदेव, बलदेवादिका परिचय देतेहुए इस प्रकरणको पूर्ण किया है। *पापतत्त्व*---की प्ररूपणा करके केवल १८ प्रकारसे बंध और ८२ प्रकारसे विपाकका उल्लेख किया है।

आश्रव तत्त्व---अर्थात् पाप-पुण्य कर्मका आत्माके प्रति आगमन-क्षीर नीरवत् एक होना, उनका क्रियमाण होना-कर्मोंको आकृष्ट करके आश्रव करवानेवाली क्रियायें-व्यवहारमें 'काईया' आदि २५ क्रियाओंका स्वरूप, कर्मग्रन्थाधारित आश्रवके ५७ कारण, श्रीस्थानांग सूत्राधारित दस असंवरके स्थान, नवतत्त्वाधारित बयालीस, प्रकारोंके निरूपणके साथ आश्रव-तत्त्व सम्पूर्ण किया गया है। *संवरतत्त्व*---संवर अर्थात् रोकना। आत्म परिणतिसे आकृष्ट कर्माश्रवको जिस विधि-आचारसे प्रतिरोधित किया जाता है, उस क्रिया-विधिको 'संवर' अभिधान दिया है। इसके विविध प्रकारान्तर्गत षट्निर्ग्रन्थ, पांच चारित्र, पाँच समिति तीन गुप्ति, बारह भावना; कर्मसंवरके प्रधान कारणभूत प्रत्याख्यानके दसभेद--स्वरूप-आगार-छशुद्धि-आहार-अनाहार,--विगय-महाविगय, अभक्ष्य द्रव्य-अनंतकाय,--श्रावकके बारह व्रत एवं प्रत्येकके आनुषंगिक भंगादिको विवरण सहित पूर्ण किया है।

निर्जरातत्त्व---'जॄ' अर्थात् झर जाना-हानि होना-अतः व्युत्पत्त्यार्थ होगा-अतिशय हानि होना- अर्थात् आत्मासे बद्ध कर्म पुद्गलोंका अतिशय क्षीण होना वह 'निर्जरा' कहलाता है। विशेषतः कर्म निर्जराका प्रमुख सहयोगी तप होनेसे इसके बारह भेद कियेगये हैं-जो बारह भेद तपके किये गये हैं। यथा-छ भेद बाह्य--अनशन, उनोदरिका, भिक्षाचरी (वृत्तिसंक्षेप), रस परित्याग, कायक्लेश, संलीनता; छ भेद अभ्यंतर--विनय, वैयावृत्य, ध्यान, स्वाध्याय, प्रायश्चित्त और व्युत्सर्ग(कायोत्सर्ग)--निश्चित किये गयें हैं। इनमें अति महत्त्वपूर्ण-विशिष्ट भेद 'ध्यान'की प्ररूपणा श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण विरचित 'ध्यान शतक' ग्रन्थाधारित आर्त-रौद्र-धर्म-शुक्ल-चारो प्रकारके ध्यानके भेदोपभेदका स्वरूप, ध्यानके स्वामी, लक्षण, लिंग, लेश्या, फल आदिका सवैया ईकतीसा एवं दोहा छंदमें विवेचन किया गया है। *बन्धतत्त्व*---सर्वबंध-देशबंधकी स्थिति, पाच शरीरके सर्वबंध-देशबंध-अबंधक स्थिति, दो बंध बीच अतर और अल्प-बहुत्त्व, बंधके चारभंगोका आठकर्म एव सर्व प्रकारके जीवाश्रयी, त्रिकालाश्रयी-भवाश्रयी स्वरूप (२८ यत्रो द्वारा); निरुपक्रम और सोपक्रम आयुष्य, आयुष्य समाप्त होनेके भगादि अध्यवसायादि सात प्रकार (कारण); वेद-सयम-दृष्टि-दर्शन-ज्ञान-भव्याभव्य-पर्याप्तापर्याप्ता-

योगोपयोग-आहारानाहार-सूक्ष्म बादर चरमाचरमादि पचास द्वारोंसे अष्टकर्मबंधका निश्चय अथवा भजना (होयानहीं) का स्वरूप; गुणस्थानकाश्रयी कर्मबंध-गुणस्थानक और जीवभेदाश्रयी कर्मप्रकृतिके उदय-सर्वगुण स्थानक वर्ती सर्व जीवोकी कर्मसत्ता-जघन्य और उत्कृष्ट प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेशबंध-चारोंके अर्थ, दृष्टान्त, कारण, भेदसंख्या, प्रमाण, बंधस्थान; भूयस्कार-अल्पतर-अवस्थित-अवक्तव्य बंधका आठ कर्मोंका स्वरूप (यंत्र द्वारा), कर्म बंध हेतुओंका वर्णन करके अंतमें पृथक् पृथक् गुणस्थान आश्रयी, मिथ्यात्वादि पाँच कारणसे सांयोगिक आदि भंगोका विवरण करते हुए 'पंचसंग्रह' आधारित युगपत् बंध हेतुको स्पष्ट किया गया है। सर्व गुण स्थानकके विशेष बंध हेतु संख्या ४६,८२,७७० का विवरण करके बंध तत्त्व प्रकरणकी इतिश्री की गई है।

मोक्षतत्त्व-इसके अंतर्गत चौदह गुणस्थानक श्रेणिको लेकर निर्जरा एवं काल द्वारसे अल्प-बहुत्व उपशम श्रेणिका स्वरूप और क्षपक श्रेणिका स्वरूप; क्षेत्र-काल-गति-तीर्थ-लिंग-चारित्र-बुद्ध-ज्ञान-अवगाहनादि द्वारोंसे द्रव्य परिमाण (जीव) और निरंतर सिद्ध होनेके यंत्रको और सांतर सिद्ध होनेके स्वरूपको-अतः अनंतर और परंपर सिद्ध स्वरूप लिखते हुए अल्प बहुत्वकी प्ररूपणा- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तीर्थादि द्वारोंसे की है। अंतमें अधोमुख, उर्ध्वमुख (कायोत्सर्ग), वीरासन, ऊकडूआसन, न्यूनासन, पासे स्थित, उत्तानस्थित, संनिकर्षादि द्वारोंसे अल्प-बहुत्वकी प्ररूपणा करते हुए अंतिम 'मोक्षतत्त्व' प्रकरणका समापन किया है।

निष्कर्ष---इस प्रकार सम्यक्त्वको दृढ़ीभूत कर्ता, समस्त जैन सिद्धान्तके साररूप जीवाजीवादि नवतत्त्वके संपूर्ण स्वरूपको-आगम एवं पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रन्थाधारित विविध यंत्र, तालिकायें, चित्र आदि द्वारा विश्लेषित करके, आगमादिके अनधिकारी, शास्त्र-सैद्धान्तिक ज्ञानसे अपरिचित-बालजीवके उपकारार्थ, -इस ग्रन्थमें सरल भाषामें विवरित किया गया है। अतः जैन दर्शनके सिद्धान्त---ज्ञानस्वरूप जिज्ञासुओंके लिए अत्युपयोगी यह ग्रन्थ रचना करनेका ग्रन्थकारका पुरुषार्थ सफल हुआ है।

---जैन तत्त्वादर्श---

"स्यात्कार मुद्रितानेक सदसद्भाववेदिनम् । प्रमाणरूपमव्यक्तं भगवंतमुपास्महे" ।

ग्रन्थ-परिचय-

संविज्ञ साधु-जीवन अंगीकृत श्री आत्मानंदजी म.सा.ने चिरकाल प्रेरणादायी उपदेश स्वरूपको ग्रथित करके जैन समाज पर महदुपकार किया है। भगवंतकी उपासना रूप मंगलाचरण करतें हुए '*जैन तत्त्वादर्श*' ग्रन्थमें देव-गुरु-धर्म-तत्वत्रयीका स्वरूपालेखन करते हैं।

छसौ पृष्ठ एवं बारह परिच्छेदमें समाहित अनेक जैन-जैनेतर ग्रन्थोके अध्येता दिग्गज विद्वद्वर्य सूरिदेव इस प्रसिद्ध ग्रन्थालेखनका आशय स्वय स्पष्ट करते है- "संस्कृत-प्राकृतके अभ्यास के लुप्त प्रायः होने से, उन भाषाओंमें संचित अद्‌भूत एव उत्तम ग्रन्थ विषयक ज्ञान भी अदृश्य होता जा रहा है। अतः उस महान ज्ञानालोकसे वर्तमानमें भव्य जीवोंको अवबोधित करने हेतु; अंग्रेजी-फारसी आदि नूतन विद्यार्जनके कारण अनेक शंका-कुशंकाये प्रचलित हुई है उनके नीरसन हेतु; स्वकर्म निर्जरा हेतु इस ग्रन्थालेखनका प्रयास किया।

है।" इस ग्रन्थराजको प्रायः हम *'जैन धर्मकी गीता'* कह सकते हैं, जिनमें तत्वत्रयीके प्रायः संपूर्ण सारको सबल एवं सफल रूपमें समाविष्ट किया है।

प्रथम परिच्छेद :- सर्व प्रथम देवतत्त्वकी प्ररूपणा की गई है। जैन धर्मानुसार, नामोल्लेख एवं विशिष्ट गुणाधारित सुदेवके स्वरूपकी प्ररूपणा करते हुए उन अरिहंत-वीतराग-परमेश्वरकी बारह गुणयुक्तता, अठारह दोषसे मुक्तता, चौंतीस अतिशय, पैंतीस वाणीसे अलंकृतता दर्शायी है। श्री हेमचंद्राचार्यजी म. कृत 'अभिधान चिंतामणी' ग्रन्थाधारित उनके प्रमुख गुणाश्रित चौबीस नाम वर्णन करके गत उत्सर्पिणीकी अतीत चौबीसीके चौबीस तीर्थंकरों के नाम और वर्तमान चौबीसीके तीर्थंकरोंके सामान्य एवं विशेषार्थ युक्त नामांकन करके अपनी औत्पातिकी बुद्धिका चमकार दिखाया है। तदनंतर अरिहंतोंके मातापिताके नाम (सार्थ) कुल-वर्ण-लांछन आदि बावन द्वार युक्त तालिकासे वर्तमान चौबीसीके चौबीस तीर्थंकरोंका परिचय दिया गया है।

अंतमें वर्तमान चौबीसीके नव-से पंद्रह तीर्थंकरोंके पश्चात् द्वादशांगी और चतुर्विध संघ रूप जिनशासनका व्यवच्छेद, उन विरहकालमें उद्भवित अनेक मत-मतांतर और उनके कपोलकल्पित शास्त्र (नूतन-वेद), मूल आर्यवेदोंका व्यवच्छेद-आदि अनेक तथ्योंके विवरणके साथ-ही प्रथम परिच्छेदका समापन किया गया है।

द्वितीय परिच्छेद:- इस परिच्छेदमें बालजीवों द्वारा अज्ञान जन्य बुद्धिसे, स्वर्गलोकाके देवोंको भगवान न होने परभी परमेश्वरके गुणोंका आरोपण करके उन्हें देवरूप मान्य 'कुदेव'के स्वरूपका वर्णन किया है। इनका स्वरूप 'सुदेव'से विपरित-अठारह दोष सहित एवं बारह गुण रहित-देव, कुदेव माने जाते हैं। *कुदेवका बाह्य स्वरूप*--इन रागी-द्वेषी-असर्वज्ञ देवोंका विशिष्ट बाह्य लक्षण स्वरूप इस प्रकार है। अपने पार्श्वमें रागका प्रतीक स्त्री, वैर-विरोधादिसे भयनिवारक शस्त्र, इष्ट प्राप्त्यार्थ जपमाला, असर्वज्ञता सूचक अक्षसूत्र, कमंडल, भस्म लगाना, धूणी तापना, नर्तनादि कुचेष्टा करना भांग-अफिम, मदिरा, मांसादिका सेवन, पशुसवारी रूप परपीडन करना, नाच-गान हास्य-रुदनादिमें आसक्त, रिझनेपर आशीर्वाद और खीझने पर अभिशाप देना आदि युक्त (स्वयं दुष्टभावके बंधनमें फंसे होनेके कारण) ये कुदेव, अन्योंको उपरोक्त दुष्ट भावसे मुक्त, कर्मरहित, मोक्षपद-प्रापक बनाकर निर्वाण-पद प्राप्ति, कैसे करा सकते हैं?

ईश्वरकी ईश्वरताकी सिद्धि--तत्पश्चात् "सर्वज्ञ, वीतराग, अशरीरी, ईश्वर--जगत्कर्ता, विश्व रचयिता या विश्व नियंता, कर्म फल प्रदाता, एक अद्वैत ब्रह्म स्वरूप, विश्व व्यापक, सर्व शक्तिमान, वेदरचयिता नही हो सकता और उनके वैसे स्वरूप माननेसे ईश्वरको अनेक कलंक प्राप्त होते हैं"-इस विषयको अनेकानेक प्रमाणिक-ठोस-युक्तियुक्त तर्कों द्वारा विश्लेषित करके सिद्ध किया कि, निर्विकार, निरंजन, कर्म निवृत्त, कृतकृत्य, ईश्वरने न कभी सृष्टि रचना की थी-न कभी करेगा -न सांप्रत सृष्टि भी ईश्वरकी रचना है। सृष्टिके जीव अनादिकालसे स्वकर्मानुसार लब्धि-शक्ति-बुद्धि प्राप्त करते हैं, और प्रवाहित संसारके प्रवाह पर डोलते-खेलते-भ्रमण करते रहते हैं एव सर्वथा कर्मक्षय पर्यंत अनतकालमे ऐसे ही जीव-क्रम--जन्म मरण-करते रहेगे जैसे वर्तमानमे हैं। अतएव ईश्वरको जगत्कर्ता

अगर मान भी लें, तो निश्चित उनका ईश्वरत्व नष्ट हो जायेगा---न वह निर्विकार रह सकेगा न निरंजन, न कर्म निवृत्ति प्राप्त होगी न कृतकृत्यता, न वीतरागता रहेगी न सर्वज्ञता।

आत्मा और कर्म--अतएव "न ईश्वर जगत्कर्ता है, न एक अद्वैत परम ब्रह्म पारमार्थिक सद्रुप"। जीव कर्म करनेमें और भोगनेमें स्वतंत्र है। कर्म भुक्तानेके लिए उसे किसीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं होती, लेकिन निमित्त प्राप्त होनेपर स्वयं भोक्ता बन बैठता है। जीवकी शरीर रचना, वर्णादि रूप और स्वरूप, वेदना, लाभालाभ, ज्ञानाज्ञान, मोहादि सर्व अष्टकर्मवश ही है। सृष्टिके प्रत्येक कार्यके घटित होनेमे काल, स्वभाव, नियति (भवितव्यता) कर्म और जीवका पुरुषार्थ-इन पांच कारणोंकी एक साथ एक समयमें संयोग प्राप्ति आवश्यक है; एककी भी न्यूनता कार्यको फलीभूत होने नहीं देती।

निष्कर्ष---अंततः कुदेवको मानना मिथ्यात्व है-पत्थरकी नावारूढ समुद्र पार होने सदृश है। अतएव कुदेवोंको परमेश्वर-परमात्मा-वीतराग-अर्हतरूप मानकर पूजा-आराधना-उपासना- न करनी चाहिए।

तृतीय परिच्छेदः- *गुरुतत्त्व स्वरूप निर्णय*---इस परिच्छेदमें सुगुरुका स्वरूप निरूपण किया है। "महाव्रतधरा धीरा, भैक्ष्यमात्रोपजीविनः सामायिकस्थ धर्मोपदेशका गुरवो मतः"

अर्थात् निष्कलंक, निरतिचार, अहिंसादि पंचमहाव्रतधारी; कष्ट-आपत्ति आदिमें भी व्रतको कलंकित न करके धैर्यधारी; चारित्रधर्म और शरीर निर्वाहके लिए बयालीस दोष रहित माधुकरी-भिक्षावृत्तिधारी (बिना धर्मोपगरणके किसी प्रकारका परिग्रह न रखें); राग-द्वेष रहित, मध्यस्थ परिणामी, और आत्मोद्धारक रत्नत्रय रूप, एवं स्याद्वाद-अनेकांत रूप सर्वज्ञ अरिहंतादिकी प्ररूपणानुसार भव्य जीवोंके उपदेशक ऐसे लक्षणधारी गुरुओंके गुण लक्षण वर्णित करके उनके पालने योग्य पाँच महाव्रत (प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण)का तथा उनकी प्रत्येककी पाँच याने पचीस भावनाका स्वरूप विशद रूपमें वर्णित किया है। तदनन्तर सर्वविरति चारित्रधारी साधुयोग्य, चारित्रके सहयोगी एवं चारित्र निर्वाहके दृढ संबल रूप प्रयोजन या प्रसंगानुसार आराध्य 'करणसित्तरी' और निरंतर आराध्य 'चरणसित्तरी' दोनोंके ७०+७०=१४० भेदोंका विस्तृत रूपमें विवरण करते हुए दोनोंका परस्पर अंतर स्पष्ट किया है।

निर्ग्रन्थके भेद---'जीवानुशासन' सूत्रकी वृत्ति, 'निशीथ' सूत्रकी चूर्णि, 'भगवती सूत्र'की संग्रहणी आदि आगम ग्रन्थानुसार उत्सर्ग-अपवाद मार्गानुरूप वर्तमानकालमें दो प्रकारके-बकुश निर्ग्रंथपना (इसके दोभेद-दस उपभेद) और कुशील निर्ग्रंथपना (इसके भी दो भेद, दस उपभेद) ही पालन करना संभाव्य है। अतः अन्य तीन प्रकारका निर्ग्रंथपना व्यवच्छेद हो गया है। साधु जीवनमे लगनेवाले अतिचारोंकी शुद्धिके लिए प्रायश्चित हो सकता है, लेकिन, उन प्रायश्चित्तोकी चरमसीमा-उल्लंघनकर्ता चारित्रभ्रष्ट माना जाता है। इस प्रकार सुगुरुके स्वरूप विश्लेषण करते हुए तृतीय परिच्छेद सम्पन्न होता है।

चतुर्थ परिच्छेदः---*कुगुरु स्वरूप निर्णय* "सर्वाभिलाषिणः सर्वभोजिनः सपरिग्रहाः ।

अब्राम्पचारिणो मिथ्योपदेशागुरवो मतः ।।"

धन-कण-कंचन-कामिनि, खेत-हाट-हवेली-चतुष्पदादि पशु-आदि अनेक प्रकारकी ऋद्धि-समृद्धिके अभिलाषी, प्राप्तिके पुरुषार्थी और रक्षामें आसक्त-सर्वाभिलाषी; भक्ष्याभक्ष्य या उचितानुचित सर्व प्रकारके आहार-पानादिका सेवनकर्ता-सर्वभोजी; कुगुरुत्वके असाधारण कारणरूप अब्रह्मसेवी-स्त्रीरूप परिग्रहधारी एवं अन्य ऋद्धि समृद्धिके परिग्रहधारी-सपरिग्रहा; सर्वज्ञ-केवली भाषित धर्मसे विपरित, अन्यथा-वितथ धर्मोपदेशका-मिथ्यामति लक्षणोंवाला कुगरु होता है ।

पाखंडीके ३६३ मत—कुगुरुके सामान्य स्वरूपालेखन पश्चात् मिथ्या उपदेशकके तीनसौ त्रेसठ भेदोंका (क्रियावादी के १८०+आक्रियावादीके ८४+अज्ञानवादीके ६७+विनयवादीके-३२ = ३६३) सविस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हुए और इन सभीको मिथ्यात्वी माननेके कारणमें उनके एकांतवादी होनेका दर्शाते हुए इन सभीकी एकान्तिकताको न्यायादि-नय प्रमाणकी अनेक तर्कसंगत युक्तियोंसे खंडित करके रोचक एवं ज्ञानप्रद विश्लेषण किया है।

एकान्त दर्शनोंका स्वरूप और अनेकान्तकी स्थापना--तदनन्तर बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, प्राचीन-निरीश्वर सांख्य और अर्वाचीन-सेश्वर सांख्य, पूर्व और उत्तर मीमांसक-येन पांच एकान्तिक, और अनेकान्तिक जैनदर्शन--ये षट् आस्तिक दर्शन; एवं कापालिक, वाममार्गी, कौलिक, चार्वाक आदि धर्माधर्म-आत्मा-कर्म-मोक्षादि न माननेवाले तथा चारभूतोंसे ही चैतन्योत्पत्ति-उसमें ही विलीन होना माननेवाले- नास्तिक दर्शनोंके स्वरूप अनेकशः रूपमें प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् उपरोक्त पाँच आस्तिक दर्शनोंके पारस्परिक आंतरिक विरोधोंका निर्देशन और एकान्तवादी दर्शनोंके विकलांग सिंद्धांतोका पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष स्थापित करके नय-प्रमाणके न्यायिक तर्ककी तुला पर युक्तियुक्ततासे विश्लेषित करके इनसे व्युत्पन्न अनर्थोंको व्यक्त किया है-यथा-बौद्धोंका क्षणिकवाद; नैयायिकोंका ईश्वर जगत्कर्तृत्व-जगत् नियंता और सोलह पदार्थ; वैशेषिकोंके छतत्त्व और नवद्रव्य-दोनोंका मोक्ष स्वरूप; सांख्योंका जगदुत्पत्ति-आत्मा व प्रकृति आदिका स्वरूप; मीमांसकका अद्वैतवाद एवं जैमिनियोंकी वेद विहित याज्ञिकी हिंसाको हिंसा न मानना इन सभीकी मान्यताओंका नीरसन करके अंतमें सदाबहार-विजयी अनेकान्तको स्थापित क नेका सफल प्रयत्न किया है। इस प्रभावोत्पादक विश्लेषणके पठन-पाठन और अध्ययन-चिंतन-मननसे कई विद्वद्वर्य श्रेष्ठ पंडितोंको भी अपने निर्णित निश्चयोंमें पुनः परामर्श करनेके लिए बाध्य होना पडा है। प्रत्यक्ष प्रमाण है परिव्राजक श्रीयोगर्जीवानंद स्वामी परमहंसजीका पत्र, जो 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' -पृ-५२६ पर उद्धृत है। तदनन्तर नास्तिक चार्वाकादि दर्शनोंकी प्ररूपणा करके उनके अयुक्त सिद्धान्तोका भी निरसन करते हुए, "चैतन्य--भूतोके कार्य या धर्मसे नही, आत्मा से संलग्न है"--- इसकी पुष्टि की है।

निष्कर्ष-इस तरह इस परिच्छेदमे कुगुरुके लक्षण, मिथ्या उपदेशक स्वरूप, भेदोपभेद सैद्धान्तिक-मिथ्या उपदेशोकी एकान्तिकतादिकी विवक्षा करते हुए षट्दर्शनका विस्तृत स्वरूप प्रस्तुत करके उन एकान्तिक दर्शनोका खडन और शुद्ध अनेकान्तिक दर्शनके प्ररूपक एवं उपकारी, आत्मिक हितेच्छु,

मोक्षमार्गाराधकादि गुणधारीकों शुद्धो-पदेशक रूपमें सिद्ध करनेका सफल प्रयत्न किया गया है तथा उन सुगुरुओंकी सेवना-उपासना करनेकी ओर इंगित किया है।

पंचम परिच्छेदः- *धर्मतत्त्व (नवतत्त्व) स्वरूप निर्णय---*

जो दुर्गतिमें जाते हुए जीवोंको धारें याने दुर्गतिमे जानेसे बचायें वह होता है धर्म। ऐसे पारलौकिक धर्मका स्वरूप तीन प्रकारका-स.ज्ञान, स.दर्शन, स.चारित्र-जिनको प्रन्थकारने पांचसे दस-छ परिच्छेदोमें अति विशद विश्लेषण और विवरणके साथ निरूपित किया है। *सम्यक् ज्ञान*---इसके अंतर्गत नय प्रमाण द्वारा जो यथावस्थित प्रतिष्ठित है-ऐसे जीवाजीवादि नवतत्त्व, चौदह गुणस्थानक आदिका यथार्थ अवबोध कराया गया है। इस परिच्छेदमें अति संक्षिप्त रूपमें ('बृहत् नवतत्त्व संग्रह' ग्रन्थके अतिरिक्त स्वरूप युक्त) 'नवतत्त्व' स्वरूप प्रस्तुत किया है। जीव--आत्माके लक्षण, स्वरूप; आत्माका कर्मबंधक-भोक्ता-निर्जरासे मोक्ष प्रपाक स्वरूप; स्वशरीर व्यापी, नित्यानित्य रूपी आत्माके जघन्य चौदह, मध्यम पांचसौ त्रेसठ, उत्कृष्ठ अनंतभेद दर्शाकर, आधुनिक शिक्षितोंके एकेन्द्रियमें चैतन्य विषयक तार्किक प्रश्नोंके उत्तररूपमें पृथ्वीकाय, अप्काय (वैज्ञानिक अन्वीक्षण अनुसार दृश्यमान ३६५२७ जीव-दोइन्द्रिय है-दृश्यमान जलही अप्कायिक जीवोंके शरीर-कलेवरके समूह रूप होता है), तेउकाय (जिनके कलेवर समूहसे अग्नि दृश्यमान होता है), वायुकाय---चारोंमें चैतन्य-जीवत्वकी अनुभूतिकी सिद्धिको तार्किक-युक्तियुक्त-प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे प्रस्तुत करके विशिष्ट कसौटी-छेद्य-भेद्य-उत्क्षेप्य-भोग्य-घ्रेय-रसनीय-स्पृश्यादि-सेभी इनमें सजीवत्वको प्रमाणित किया है। जीवोंके शेष भेदोंके वर्णनके लिए 'बृहत् नवतत्त्व संग्रह'-ग्रन्थकी और इंगित किया है। अजीव-धर्मास्तिकायादि पांच प्रकारके अजीवका स्वरूप संक्षेपमें प्रस्तुत किया है। पुण्य---पुण्य प्राप्ति करवानेवाले नव अनुष्ठान और विपाकोदयके बयालीस प्रकार दर्शाये हैं। पाप--आत्मीय आनंदशोषक पापकर्मबंधके १८ प्रकार और विपाकोदयके बयासी प्रकार पेश किये हैं। आश्रव-पुण्य और पाप-दोनों प्रकारके कर्मोका पाँच द्वारोंसे आत्माकी ओर आकृष्ट होना आश्रव कहलाता है जो बयालीस प्रकारके होते हैं। संवर--इन आश्रवोंका निरोधक, वह है संवर, जो सत्तावन भेद युक्त होता है निर्जरा--आठ कर्मोंकी आत्मासे निर्जरणा करानेवाली निर्जरा-तपसदृश-बारह प्रकारसे मानी गयी है। बंध--कर्मोंका बंध चार प्रकारसे-प्रकृति, स्थिति, अनुभाग (रस) और प्रदेश; तथा स्पृष्ट-बद्ध-निधत्त-निकाचित चार प्रमाण रूप आत्मासे संलग्नता; आत्मा और कर्म-दोनोकी अनादि अपश्चानुपूर्वीता, एव कर्मबंधके सत्तावन उत्तरभेदोका स्वरूप वर्णित किया है। मोक्ष--सर्व कर्मक्षय हो जानेसे जीवका संपूर्ण निर्मल स्वरूप ही मोक्ष कहलाता है मोक्ष ही जीवका धर्म है, और मुक्त सिद्धात्मा धर्मी है। यहाँ सत्पद प्ररूपणादि बारह एवं द्रव्यादि नव द्वारोंसे सिद्धोका स्वरूप विवरित किया गया है।

निष्कर्ष-इस तरह नवतत्त्वोकी विवेचना करके इस परिच्छेदकी पूर्णाहुति की गई है।

षष्ठम् परिच्छेद --*धर्मतत्त्व (स ज्ञानातर्गत गुणस्थानक) निर्णय----*

'बृहत् नवतत्त्व संग्रह' ग्रन्थमें प्रत्येक गुणस्थानकके अधिकारी जीवोंके गुण-लक्षणादिका वर्णन प्राप्त होता है, जबकि, यहाँ प्रत्येक गुणस्थानकका स्वरूप-लक्षणादिका विवेचन किया गया है। इस परिच्छेदमे सिद्धिसौधके शिखरारूढ होनेके लिए गुणोंकी चौदह श्रेणियाँ हैं-उन श्रेणियो पर पगधरण रूप गुणोंसे गुणांतरकी प्राप्तिरूप स्थानको-भूमिकाको गुणस्थानक कहते हैं। गुणस्थानकका स्वरूप, प्राप्तिक्रम, गुणस्थानक धारककी योग्यायोग्यताका स्वरूपादि संक्षिप्त फिरभी स्पष्ट-सुरेख-सरल एवं सुंदर निरूपण किया है। इन गुणस्थानककी प्राप्ति साधक जीवनकी कसौटीके फलरूप मान सकते है।

(१) मिथ्यात्व--अर्थात् विपरीत आत्मीक परिणाम। इसके दो प्रकार (i) अनादि अनाभोगिक (अव्यवहार राशिवर्ती जीवोंका अव्यक्त) मिथ्यात्व और (ii) (व्यवहार राशिके संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंका व्यक्त मिथ्यात्व) आभिग्राहिक आदि चार मिथ्यात्व। द्वितीय प्रकारके चार मिथ्यात्व-अवगुण होने पर भी-बुद्धिजन्य होनेसे उनमें ज्ञानांशके अस्तित्वके कारण उनको 'गुणस्थानक' संज्ञा प्राप्त होती है। अभव्यापेक्षया अनादिअनंत और भव्योंकी अपेक्षा सादि सांत अथवा अनादिसांत स्थितिवाले मिथ्यात्व गुणस्थानकवर्ती जीवको ११७ कर्म प्रकृतिका बंध, ११७ प्रकृतिका उदय और १४८ की सत्ता होती है।

(२) सास्वादन--इस गुणस्थानक प्रापक-जीव-केवल उपशम सम्यक्त्वी-इसे पतीतावस्थामें कैसे प्राप्त करता है, उसे निरूपित करते हुए, यहाँकी स्थिति-(छ आवलिका)-और इस गुणस्थानकवर्ती जीव योग्य १०१ कर्म प्रकृतिका बंध, १११ का उदय और १४७की सत्ताकी प्ररूपणा की है।

(३) मिश्र--दर्शन मोहनीय कर्मके सम्यक्त्व और मिथ्यात्व-दोनों भाव समकाल-समरूप उदयमें आते हैं। इस स्थानवर्ती जीवको सर्वधर्म समान भासित होते हैं। इस स्थानवर्ती जीव न आयुबंधक होता हैं, न मरता है। यहाँ जीव ७४ कर्म प्रकृतिका बंध, १०० का उदय और १४७ की सत्ता प्राप्त करता है।

(४) अविरति सम्यक् दृष्टि--भव्य संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवकी, निःसर्गसे या अभ्यासवश उपदेश श्रवण आदि निमित्तसे सर्ववित् प्रणीत तत्त्वोमें यथावत् निर्मल भावना प्रगट होना, यही सम्यक्त्व है। यहाँ जीवको अविरतिके कर्मोदयसे विरतिकी (पच्चक्खाण या नियम) अभिलाषा होने पर भी ग्रहण नहीं कर सकता है, लेकिन शासन प्रभावक और आत्मोन्नति कारक होते है। आत्माके साथ यह सम्यक्त्व उत्कृ.साधिक ६६ सागरोपम वर्षतक रहता है। जीवका अर्धपुद्गल परावर्त-काल परिभ्रमण शेष रहने पर यह गुणस्थानक प्राप्त होता है। इस गुणस्थानकवर्ती जीवमें प्रशमता, मोक्षाभिलाष रूप संवेग, परम वैराग्यरूप संसारसे निर्वेद, आस्तिक्य और दीन-दुःखी पर अनुकंपाके दर्शन होते हैं। इस गुणस्थानक प्राप्तिकी प्रक्रिया-जीव यथाप्रवृत्तिकरणसे ग्रन्थि प्रदेश प्राप्ति, अपूर्वकरण से ग्रन्थिभेद का प्रारम्भ और अनिवृत्तिकरणसे ग्रन्थिभेदकी समाप्ति करके सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है। अबद्धआयु क्षायिक सम्यक्त्वी जीव तद्भव मोक्ष, और सम्यक्त्व-प्राप्ति पूर्वबद्धआयु जीव तीनसे पाच भवमे मोक्ष प्राप्ति करता है। यहाँ जीवको ७७ कर्म प्रकृतिका बंध, १०४का उदय और क्षायिक सम्यक्त्वीको १३८की एव उपशम

सम्यक्त्वीको १४८ की सत्ता होती है।

(५) देश विरति गुणस्थानक---सम्यग् दृष्टि जीव जब चारित्र मोहनीयके प्रथम तीन चतुष्कके अनुदयमें जघन्य-मध्यम-या उत्कृष्ट देशविरति श्रावक धर्म अंगीकार करता है और शनैः शनैः विरति परिणामके वृद्धिगत होनेसे कषाय मंदताकी भी वृद्धि होते होते मध्यम प्रकारका धर्मध्यान भी कर सकता है। यहाँ जीवको ६७ कर्म प्रकृतिका बंध, ८७का उदय, एव १३८की सत्ता होती है। यह गुणस्थानक तद्‌भवआयु पर्यंत सिमित रहता है।

(६) प्रमत्त संयत—इस गुणस्थानकवर्ती पंचमहाव्रतधारी सर्वविरतिधर साधु होते हैं, जो कारणवश प्रमत्त बननेके कारण सावद्य-पापमय प्रवृत्तिके सम्भवसे आर्त-रौद्रध्यानी और आज्ञा-अपायादि सालंबन ध्यानकी गौणतायुक्त होते हैं। कभी परम संवेगारूढ मनोजनित समाधिरूप-निर्विकल्प ध्यानांशका परमानंद रूप अप्रमत्तता प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन निरालंबन ध्यान नहीं। वे षट् कर्म-षडावश्यकादि व्यवहार क्रिया करके आत्मिक परिणाम शुद्धि-दिनरात्रीगत दूषण शुद्धि करते हुए अप्रमत्त गुणस्थानक प्राप्ति योग्य सामर्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। इस गुणस्थानक स्थित जीवको ६३ का बंध, ८१ का उदय और १३८ की सत्ता होती है।

(७) अप्रमत्त गुणस्थानक--पंचमहाव्रतधारी, पंचप्रमाद युक्त १८००० शीलांगयुक्त, ज्ञानी-ध्यानी-मौनी, दर्शन सप्तकके क्षपी और शेषके क्षपण या उपशमन करनेमें उद्यत, निरालंबन ध्यानके प्रवेशकर्ता, मैत्र्यादि चार या पिंडस्थादि चार ध्यान लीन, क्वचित् रूपातीत ध्यानकी उत्कृष्टतामें शुक्लध्यानके अंश प्राप्त करते हैं। इस स्थानकवर्ती जीवको व्यवहार क्रिया रूप षडावश्यकके अभावमें भी आत्मिक गुणरूप निश्चय सामायिक होती ही है। अतः अष्टकर्मरज अपहृत कर्ता तपसंयमसे निग्रह और उपशमसे परम शुद्धि प्राप्त स्वभावरूप आत्मा, संकल्प-विकल्पको विलीन करके मोहनीयके अंधकारका नाशक-त्रिभुवन प्रकाशक ज्ञान-दीप प्रगट करती हैं। यहाँ जीवको (देवायु बिना ५८)-५९ कर्मप्रकृतिका बंध, ७६ का उदय और १३८ की सत्ता होती है। इसकी स्थिति एक अंतर्मुहूर्त है, तदनन्तर जीव छठे या आठवें गुणस्थानक पर चला जाता है। (आठसे बारह--पांच गुणस्थानकस्थ जीवकी स्थिरता -स्थिति एक अंतर्मुहूर्त प्रमाण होती है, तदनन्तर गुणस्थानक परिवर्तीत हो जाता है)।

(८) अपूर्वकरण--चार संज्वलन कषाय और छ नोकषायोंके मंद होनेसे परमाह्लाद रूप अपूर्व पारिणामिक उत्तमगुण प्राप्त होता है। क्षपक या उपशम श्रेणिके प्रारम्भक इस गुणस्थानकवर्ती जीव २६ कर्म प्रकृतिका बंध, ७२ का उदय और १३८ की सत्ता प्राप्त करता है।

(९) अनिर्वृत्ति बादर—सकल्प-विकल्परहित निश्चल-परमात्माके साथ एकत्वरूप प्रधान परिणित रूप भावोकी निवृत्ति न होनेसे और बादर अप्रत्याख्यानीय आदि बारह कषाय-नवनोकषाय का क्षपक या उपशमक होनेसे इसका नाम अनिर्वृत्ति-बादर-कषाय गुणस्थानक माना जाता है। यहाँ जीवको २२ कर्म प्रकृतिका बध, ६६का उदय और १०३की सत्ता होती है।

(१०) सूक्ष्म संपराय और (११) उपशात मोह---दसवे गुणस्थानक पर सूक्ष्म परमात्म तत्त्वके भावना बलसे मोहनीय कर्मकी २७ प्रकृतियोका क्षय या उपशम और एकमात्र सूक्ष्म लोभका अस्तित्व

होता है। अतः इस गुणस्थानकको 'सूक्ष्म संपराय' कहते है। यहाँ जीवको १७ का बंध, ६० का उदय और १०२ की सत्ता प्राप्त होती है। और जो जीव मूर्तिरूप सहज स्वभावसे सकल मोहका उपशमन करता है वह जीव 'उपशांत मोह' गुणस्थानक प्राप्त करता है।

(१२) क्षीण मोह---निष्कषाय-शुद्धात्मभावसे सकल मोहके क्षय करनेवाले जीव 'क्षीणमोह' को प्राप्त करते हैं। इस गुणस्थानकके अंतमे जीवको केवल एक शातावेदनीय का बंध, ५७ का उदय और १०१की सत्ता होती है। (जीव आठवें गुणस्थानकसे ही क्षपक या उपशमकके यथायोग्य श्रेणिका आरोहण करता है। यहाँ उपशमककी योग्यता, उनके करण, स्थिति, फलप्राप्ति, भवोंकी संख्या, उनकी पतीतावस्था या मोक्ष प्राप्तिका स्वरूप वर्णित करते हुए उपशम श्रेणिका और क्षपककी योग्यता-आसन-स्थिति-ध्यानादिका स्वरूप-भाव प्रधानता, ८-९-१० गुणस्थानक पर शुक्लध्यानका प्रथम चरण, बारहवेंमें द्वितीय चरण प्रवेश आदिके विवेचनके साथ ही धर्मध्यान-शुक्लध्यान का स्वरूप सरल शैलीमें प्रस्तुत किया है।

(१३) सयोगी केवली---बारहवेंके अंतमें ध्याता केवली बनता है और तीनों योगकी विद्यमानताके कारण इन्हें सयोगी केवली कहा जाता है। इनको क्षायिक-शुद्धभाव-परम प्रकृष्ट सम्यक्त्व एवं यथाख्यात चारित्र प्राप्त होता है। उनके केवल ज्ञानमें चराचर त्रिलोकके त्रिकालिक, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त द्रव्य-गुण-पर्यायके संपूर्ण-अनंतज्ञान हस्तामलकवत् भास्वर होता है। तीर्थंकर केवलीको आतिशायी पुण्य प्रभावसे अद्भूत एवं अद्वितीय अतिशय युक्त रिद्धि-समृद्धि प्राप्त होती है। वे चतुर्विध संघरूप तीर्थकी स्थापना करके शाश्वत जैनधर्मका प्रवर्तन करते हैं। अन्तमें आयुष्य पूर्ण होनेके अंतर्मुहूर्त पूर्व केवली समुद्घातकी प्रक्रिया, अंतिम दो चरण युक्त शुक्ल ध्यानकी प्रक्रिया, तीनों बादर एवं सूक्ष्म योगोंके निरोधकी प्रक्रिया आदिका अद्भूत वर्णन करते हुए शाता वेदनीयका बंध, ४२ का उदय तथा ८५ की सत्ताकी परूपणा की हैं। इसके साथही आयुष्यके पांच ह्रस्वाक्षर-अ इ उ ऋ लृ-का उच्चारण काल समय शेष रहने पर साधक शैलेषीकरण करता है। *(१४) अयोगी केवली* गुणस्थानक प्राप्त कर्ता साधककी स्थिति, उपान्त्य समयमे कर्मकी अबंधकता, और ७२ प्रकृतिकी सत्ता एवं अंतिम समय १३ प्रकृतिका क्षय करते हुए कर्मरहित होकर सिद्धोंकी गति, स्थिति, सुख, अवगाहना, गुण मोक्षपद प्राप्ति और सिद्धशिलाका स्वरूप, स्थान---मुक्तिका स्वरूप, उपादेयता आदिका विवेचन करते हुए परिच्छेद की समाप्ति की हैं।

सप्तम परिच्छेदः- *धर्मतत्त्व (सम्यक् दर्शन) स्वरूप निर्णय* -

<u>सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर दृढ श्रद्धायुक्त सम्यक्त्व</u>---सुदेव श्रद्धाके दो भेद-(i) सुदेव-अरिहंतके चारो निक्षेपा प्रति दृढश्रद्धा रूप व्यवहार श्रद्धा और (ii) अनन्त गुणधारी सच्चिदानद स्वरूपा स्वयंकी आत्माका निश्चय होने रूप निश्चय श्रद्धाका वर्णन. सुगुरु श्रद्धाके दो भेद (i) सुपात्र रूप सुगुरुकी समर्पित भावसे भक्ति-वैयावृत्य-आज्ञापालन रूप व्यवहार श्रद्धा और (ii) शुद्धात्म विज्ञानपूर्वक, हेयोपादेयके उपयोगयुक्त परिहारवृत्तिवाला गुरुत्व स्वय पाना. यह निश्चय श्रद्धाका वर्णन. धर्म श्रद्धाके दो

भेद (i) दया (अहिंसा)के विविध स्वरूपोंका पालनरूप व्यवहार धर्म और (ii) सर्व कर्मरहित, भौतिकभाव रहित सर्वगुण संपन्न आत्म स्वरूपकी प्राप्तिका वर्णन करके सम्यक्त्व प्राप्ति, सद्‌गति प्राप्ति, परंपरासे मोक्षलाभका वर्णन किया है।

सम्यक्त्वीकी करणी और सैद्धान्तिक प्ररूपणा–श्री जिनमंदिरकी आशातना स्वरूप, विविध पूजा स्वरूप, साधर्मिक वात्सल्य, सम्यक्त्वके पांच अतिचार, अतीत और वर्तमानकालीन आयु और द्वीपादि भौगोलिक एवं सूर्यमंडलादि खगोलिकादि अनेक विषयोंकी जैन-सिद्धान्तानुसार और वर्तमानकालीन प्ररूपणाओंकी विपर्यताका तार्किक युक्तियुक्त विश्लेषण करते हुए वर्तमानकालीन जैन ग्रन्थोंकी स्थिति, इन्द्रजालिककी रचनाके सत्ताईस पीठ, 'रायाभियोगेणं' आदि छ विशिष्ट आगार और 'अन्नत्थणाभोगेणं' आदि चार सामान्य आगारोंका वर्णन करते हुए इस परिच्छेदको पूर्ण किया है।

अष्टम परिच्छेदः--*धर्मतत्त्व (सम्यक् चारित्र) स्वरूप निर्णय*-

मोक्षमार्गमें उपकारी एवं उपादेय सम्यक् चारित्रके दो भेद होते हैं-(i) सर्व सावद्य कार्योंका संवररूप सर्वविरति चारित्र (तृतीय परिच्छेदमें सुगुरु वर्णनमें इसका स्वरूप निर्देशन किया गया है।) और (ii) गृहस्थ धर्मरूप (देशविरति चारित्र)। यहाँ श्रावक धर्मान्तर्गत बारह व्रतके स्वरूपका आलेखन किया गया है।

बारह व्रत स्वरूप-(१) जैनधर्म परम एवं चरम स्वरूपी उत्कृष्ट अहिंसामय होनेसे सर्व प्रथम व्रत रूप *प्राणातिपात विरमण व्रत* रखा है, जिसके अंतर्गत व्यवहार दया रूप द्रव्य प्राणातिपात और भावदयारूप भाव प्राणातिपातका आलेखन करते हुए आकुट्टी आदि चार प्रकारके प्राणातिपात, साधु योग्य बीस विश्वा प्रमाण और श्रावक योग्य सवा विश्वा प्रमाण दया, निकाचित-रस बंधके संवरके लिए निर्ध्वंसपनेका त्याग करके यत्नपूर्वक, कोमल-करुणामय-हृदयसे श्रावक योग्य करणी करनेका निर्देशन करते हुए प्रथम व्रतमें कलंकरूप पांच अतिचारोंका वर्णन किया गया है। *(२) स्थूल मृषावाद विरमर्ण व्रत*--इस व्रतकी स्वरूप व्याख्या, इसके उपभेद, पांच अतिचार और योग्य अधिकारीके लक्षणरूप---षट्‌द्रव्यके गुण-पर्यायादिका निपुण ज्ञाता-की चर्चा की है। *(३) स्थूल अदत्तादान विरमण*--इस व्रतकी व्याख्या, स्वरूपभेद--द्रव्य और भाव अथवा स्थूल और सूक्ष्म-का आलेखन, उन दोनों स्वरूपोंके चार-चार भेद, और पांच अतिचारका विवरण दिया गया है। *(४) स्थूल मैथुन विरमण (स्वदारा संतोष) व्रत*--इसके दोभेद-द्रव्यसे विजातीयसे अब्रह्म सेवन त्याग एवं भावसे, शुद्ध चैतन्य संगी--परपरिणतिका त्यागका वर्णन और पाच अतिचार दर्शाये गये हैं। *(५) स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत*--द्रव्यकी मूर्च्छा ही परिग्रह मानते हुए नव प्रकारके परिग्रहका स्वरूप, दो भेद---बाह्य (द्रव्य), आभ्यंतर (भाव)-और द्रव्य परिमाणके नियममे वृद्धिरूप उल्लघन-अतिचारका वर्णन किया है। *(६) दिशि परिमाण व्रत*--दश दिशाओमे गमनागमनकी मर्यादा करना-यह द्रव्यसे और स्वआत्माके अगति स्वभाव जानकर सर्व क्षेत्रमे गमनागमनमे औदासिन्य-यह निश्चयसे-इसतरह इस व्रतके व्यवहार और निश्चय-दो भेद और पाच अतिचारोंका वर्णन किया गया है। *(७) भोगोपभोग परिमाण*

व्रत--दो भेद व्यवहार और निश्चय। सचित्तादिका त्याग या परिमाण; बाईस अभक्ष्य और बत्तीस अनंतकाय एवं मांस-मधु-मक्खनादिके अभक्ष्य होनेके कारणादिकी जैन एवं जैनेतर दर्शन-ग्रन्थाधारित विस्तृत चर्चा; मदिरापानके ५१ दूषण और मांस भक्षणके अनेक दूषण, प्रतिदिन श्रावक योग्य करणीय चौदह नियम, पंद्रह कर्मादान और पांच अतिचारोंका निरूपण किया गया है। *(८) अनर्थदंड विरमण व्रत*--धनवृद्धि-धनरक्षा-परिवारादिकी पालना-स्वइन्द्रिय भोगोपभोग करते हुए पापके कारण जीव जो दंड भोगे वह अर्थ दंड और इसके अतिरिक्त अपध्यान-आर्तध्यान, रौद्रध्यान, पापोपदेश, हिंस्र शस्त्रादि प्रदान, प्रमादाचरणादि चार प्रकारके अनर्थ दंडके त्यागकी प्रेरणा एवं पांच अतिचार स्पष्ट किये हैं। *(९) सामायिक व्रत*--आत्मानुभव एवं सहजानंद-प्रकटीकरण अभ्यासरूप शिक्षाव्रत-सामायिककी विधि, उससे लाभ, उसमें लगनेवाले बत्तीस दोष और पांच अतिचारोंका कथन किया गया है। *(१०) देशावकाशिक व्रत*--दिग्परिमाणादि व्रतोंका मर्यादित समयके लिए संक्षेप-यह देशावकाशिक व्रत कहा जाता है। इसके आणवण प्रयोगादि पांच अतिचार दर्शाये हैं। *(११) पौषधोपवास व्रत*--आहारादि चार प्रकारके त्यागसे आत्मिक गुणोंका पोषक-पौषध; कर्मरूप भवरोगकी भावौषधि रूप-पर्व दिनोंमें आराध्य हैं, जिसमें लगनेवाले पांच अतिचार और अठारह दूषण त्याज्य हैं। *(१२) अतिथि संविभाग व्रत*--अकस्मात् आये हुए, पात्रतायुक्त, माधुकरीसे उदरपूर्ति कर्ता, अतिथिको पांच गुण युक्त उत्तमदाता निर्दोष शुद्धाहार भक्तिपूर्वक दान करें। इसके भी पांच अतिचार वर्ज्य कहे हैं।

निष्कर्ष-इस प्रकार पांच अणुव्रत, उनको गुण(वृद्धि)कर्ता तीन गुणव्रत एवं उन व्रतोंमें स्थिर करनेवाले शिक्षाप्रदाता चारव्रत-एवंकार बारह व्रतोंकी योगशास्त्रादिके अवलंबनसे प्ररूपणा हुई है।

नवम परिच्छेदः- *धर्मतत्त्व (स. चरित्र) स्वरूप निर्णय* -

धर्म स्वरूपान्तर्गत मोक्षमार्गोपकारी एवं उपादेय स.चारित्रके स्वरूप निर्देशान्तर्गत श्रावकके पांच कर्तव्य-दिन-रात्रीकृत्य, पर्वकृत्य, चातुर्मासिक कृत्य, सांवत्सरिक कृत्य और जन्मकृत्यका विवरण किया जा रहा है। इनमेंसे इस परिच्छेदमें दिनकृत्यका वर्णन किया है-यथा-

दिनकृत्य-प्रतिदिन अल्प निंद्रा लेकर ब्रह्म मुहूर्तमें जागना-आत्म चिंतवन-श्रीनमस्कार महामंत्रका हृदय कमलबंद जाप-प्रतिक्रमण-आयुवृद्ध एवं गुणादि वृद्धोंकी भक्ति-वैयावृत्त्य-ज्ञान, ध्यान, और स्वाध्याय-व्रत-(चौदह) नियम धारणा-सम्यक्त्व युक्त द्वादश व्रतादिका पुनः स्मरण-द्रव्य एवं भावसे जिनपूजा-गुरुवंदन-जिनवाणी श्रवण-अनुकूल प्रत्याख्यानादि धर्मकरणी-आत्मव्यापार-पश्चात् आजिविकाके लिए अर्थोपार्जन रूप व्यापार-सुपात्रदान-साधर्मिक भक्ति-पंचपरमेष्ठि स्मरणपूर्वक रसवतीकी साम्यता सहित-गृद्धि आसक्ति रहित भोजन;भोजन पश्चात् करने योग्य कार्य सायंकाल श्री नमस्कार महामंत्र स्मरण-देव-गुरुवंदन-प्रत्याख्यान-षट् आवश्यक-पठन पाठन-गुरुवैयावृत्त्य, परिवारके साथ धर्मचर्चा-चारों आहार त्याग रूप प्रत्याख्यान करके दिनगत कृत्य समाचरणके विवरणको सम्पन्न किया है। इनके साथही श्रावक योग्य कई सैद्धान्ति विषयोंकी प्ररूपणा भी की है।

सैद्धान्तिक प्ररूपणा--पृथ्वी आदि पांच तत्त्व-सूर्य-चंद्र नाडिका स्वरूप और लाभालाभ, शुभाशुभ

फल, जापके प्रकार-विधि और फलोपलब्धि-रात्री स्वप्नोंके कारण और दिवा स्वप्न-रात्री स्वप्नके शुभाशुभ फल प्राप्ति -सचित्ताचित्त स्वरूप-काल मर्यादा-द्विदल स्वरूप-द्वादश व्रत भंगका स्वरूप और विपाक-अभक्ष्यका स्वरूप-निरवद्य आहार स्वरूप-प्रत्याख्यान स्वरूप, विधि एवं फलनिर्देश,-आहार्य-अनाहारी द्रव्य स्वरूप-सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीवोत्पत्तिके चौदह स्थान-जिनपूजाकी सात प्रकारसे शुद्धि-द्रव्य और भावपूजाकी विधि-दोनोंके दोभेद-स्वरूप, दिनगत सात बार चैत्यचंदनका स्वरूप-गृहचैत्य एवं श्रीसंघ चैत्यकी निर्माण विधि-शुद्धता, पवित्रता, जीर्णोद्धारादिकी आवश्यकता-जिनपूजा अविधिसे अथवा न करनेसे प्रायश्चित्त विधि-उत्कृष्ट द्रव्य और भावपूजाका फल पांच प्रकारसे जिनभक्ति स्वरूप-जिनभुवनकी और गुरुके प्रति आशातनाका स्वरूप-चार प्रकारके द्रव्य(धन) की वृद्धि-रक्षा-एवं व्यवस्था स्वरूप-गुरुवंदन विधि और प्रकार-गुरू भक्ति-वैयावृत्यका स्वरूप-व्यापार शुद्धि-द्रव्योपार्जनके प्रकार-पाप पुण्यके अनुबंधके प्रकार और विपाक-औचित्यपूर्ण व्यवहारका स्वरूप-दानके प्रकार पंचदूषण और पंचभूषण एवं फल-सुपात्रके प्रकार-भोजन विधि-आरोग्य चिंता आदिका 'श्राद्धविधि' तथा 'श्रावककौमुदी'के आधार पर विवरण करके बारहव्रतके समापनके साथ इस परिच्छेदकी भी परिसमाप्ति की गई है।

दसम परिच्छेदः- *धर्मतत्त्व (स. चारित्रान्तर्गत) गृहस्थधर्म निरूपण---*

दिन कृत्य वर्णन पश्चात् श्रावक योग्य शेष कर्तव्योंका इस परिच्छेदमें विवेचन किया गया है।

रात्रीकृत्य--संध्या समय पौषधशालामें प्रतिक्रमण-स्वाध्याय-गुर्वादिकी भक्ति वैयावृत्त्य-बारह व्रतोंका प्रयत्नपूर्वक पालन-चिंतवन-सात क्षेत्रोमें दान-पारिवारिकजनोंके साथ धर्मचर्चानन्तर प्रथम प्रहर व्यतीत होने पर हितकारी शय्या पर अल्प निद्रा लेनेकी प्रेरणा दी है। (यहाँ शयनविधि-शयन एवं शैय्या स्वरूप, ब्रह्मचर्य पालनके लाभ, कामवासना आदि अनेक अशुभ भाव जीतनेके उपाय, भवस्थिति तथा धर्ममनोरथ भावना, भवांतरमें धर्मप्राप्ति और परंपरासे मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषा आदिकी चिंतवनाका स्वरूप वर्णन किया है।)

पर्वकृत्य-एक मासमें पाँच अथवा बारह पर्व तिथि और वर्षमें छ अट्ठाइयाँ, तीर्थंकरोकी पाँचो कल्याणक तिथियाँ, ज्ञानपंचमी, मौन एकादशी, अक्षय तृतीया आदि पर्व दिनों मे पौषध-प्रतिक्रमण-सामायिक या देशावकाशिक आदि व्रत अंगीकार; ब्रह्मचर्य पालन-आरंभ समारंभ वर्जन-विशिष्ट तप-सुपात्र दानः देव-गुरुकी विशिष्ट प्रकारसे (अष्ट प्रकारी) पूजा-भक्ति-वैयावच्चादि आराधना करनेसे पर्व प्रभावके कारण अधर्म-अशुभ भावका धर्मादि शुभ भावोमें परिणमन होता है, जिससे उन तिथियोमे मनके शुभ परिणामोंके कारण परभवायुष्य-बंध भी शुभगतिका होता है-आत्मा की सद्गति होती है। अजैनोंके पर्व परभाव रमणताके कारण अशुभ बंधका कारण होता है, जबकि जैन पर्वाराधना-साधना कर्मनिर्जरा करवाती है।

चतुर्मासिक कृत्य-वर्षाकालीन चातुर्मासिक समयमे भी देशविरति या अविरति श्रावकोको विशिष्ट आराधनासे आत्मिक गुण पुष्टि और विराधना निवारणसे आत्म कल्याण करनेकी प्रेरणा दी है-यथा-बारह व्रत पालन-स्नात्र महोत्सव अपूर्व (नूतन) ज्ञान प्राप्ति, रत्नत्रयीकी विशिष्ट आराधना,

पंचाचारका पालन-ग्रामांतर गमन त्याग, सावद्य योगोंका परिहारादिके साथ पर्व कृत्यमें दर्शित आराधना करणीय है।

सांवत्सरिक (वार्षिक) कृत्य--संघपूजा, साधर्मिक वात्सल्य, तीन प्रकारसे तीर्थयात्रा, स्नात्र महोत्सव; देवद्रव्यवृद्धि, महापूजा, रात्री जागरिका, श्रुतज्ञानकी नूतन रचना और पूजा, तपकी अनुमोदना रूप उद्यापन, तीर्थ प्रभावना गीतार्थ गुरुके योग प्राप्त होनेपर आलोचना और प्रायश्चित्तसे आत्मिक शुद्धि और मोक्षगामीपनेकी योग्यता आदि कर्तव्य करने योग्य है। यहाँ प्रायश्चित्त-दाता अधिकारी गुरुओकी योग्यताकी विशद विवेचना की गई है।

जन्मकृत्य-- गृहस्थको अपनी संपूर्ण जिंदगीमें करने योग्य अठारह कर्तव्योंका वर्णन किया है। उचितवास, विद्या-प्राप्ति, विवाह-विचार, योग्य मित्रकी मित्रता, श्री जिनमंदिर निर्माण-जीर्णोद्धारादि, जिनप्रतिमा निर्माण-इन दोनोकी प्रतिष्ठा, दीक्षाके लिए प्रेरणा और उसकी अनुमोदनार्थ महोत्सव कार्य, योग्य साधु-साध्वीको पदवी-प्रदानादिके महोत्सव, ज्ञानभक्ति, पौषधशाला निर्माण, आजीवन सम्यक्त्व-बारहव्रतका पालन, सदैव दीक्षा ग्रहणके भाव और औदासीन्यतासे जलकमलवत् गृहवास सेवन, आरम्भ-समारंभका त्याग, आजीवन ब्रह्मचर्य, ग्यारह प्रकारसे श्रावक प्रतिमावहन, अंतिम समयमें दस प्रकारकी आराधना-संलेषणा-अनशन- या भाववृद्धि होने पर संयम अंगीकार करके भवस्थिति अल्पतर करनेके प्रयत्न करने चाहिए।

निष्कर्ष--इस प्रकार पांच प्रकारके कृत्योंका यथाशक्ति-यथायोग्य पालन करनेसे इहलौकिक और पारलौकिक-भौतिक एवं आत्मिक सुख भोगते हुए मोक्षसुख प्राप्तिकी शुभेच्छा व्यक्त की है।

एकादश परिच्छेदः- *त्रेसठ शलाका पुरुष वृत्त-निरूपण* --

तत्कालीन नूतन शिक्षा प्राप्त जिज्ञासुओंकी तसल्लीके लिए जैनधर्मकी शाश्वतता, वर्तमानकालीन जैनधर्मका प्रचलन, भ.श्रीऋषभदेवसे भ.श्रीमहावीर स्वामी पर्यंतके त्रेसठ शलाकापुरुषोंके ऐतिहासिक वृत्तांतोंको धार्मिक परिवेशमें प्ररूपित किया गया है। जैनधर्म न किसी अन्य धर्मकी शाखा है-न अन्य धर्मसे निष्पन्न-न किसीका आविर्भूत किया हुआ है; लेकिन द्रव्यार्थिक नयसे प्रवाहित रूपमें अनादिकालसे निरंतर चला आ रहा है-जिसका समय समय पर तीर्थंकरों द्वारा परिमार्जन और प्रसारण किया जाता है। यहाँ उत्सर्पिणी--अवसर्पिणीकालका वर्णन, कल्पवृक्ष-युगलिक धर्म-सात कुलकर और उनकी दंड़नीति आदिका वर्णन, ऋषभदेवके प्रति जगत्कर्ता और विश्वरक्षक रूपमें जैनेतरोंकी मान्यता, नमि-विनमि से इन्द्र द्वारा विद्याधर वंशकी स्थापना, भरत चक्रवर्ती द्वारा चार आर्य वेदोंकी रचना, माहण अथवा ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति-ब्राह्मणोंके व्रतधारी श्रावक और साधु होनेके उल्लेख- (भरतके घर नित्यभोजी ब्राह्मण श्रावकोंकी पहचानके लिए काकिणि रत्नसे तीन रेखाको चिह्नित् करना (वही तीन रेखा ही काकिणी रत्नके अभावमें सुवर्ण-रजत-रेशम या सूतके धागोंकी यज्ञोपवितका रूप धारण कर गई)- इस प्रकार यज्ञोपवितका प्रारम्भ हुआ। श्री सुविधिनाथ भगवत तक यह परंपरा चली और बादमें बारबार जैनधर्मके विच्छेद होने पर याज्ञवल्क्यादि द्वारा स्वकपोल कल्पित नूतन वेद और हिंसक यज्ञ प्रारम्भ हुआ

तथा पिप्लादसे तो मातृमेध एवं पितृमेध जैसे भयंकर हिंसक यज्ञ प्रारम्भ होते हैं। सांख्यादि अन्य मतोत्पत्ति और प्रचलन-सूर्यवंश, चंद्रवंश, वानरवंश, राक्षसवंशादिकी उत्पत्तिके ऐतिहासिक प्रमाण-जमदग्नि, परशुराम और सुभूम चक्रवर्तीके संबंध-विष्णुकुमार और नमुचिका अधिकार-राम, लक्ष्मण, रावणके संबंध और रावणको प्राप्त दशानन उपनामका कारण, कृष्ण वासुदेव, जरासंध प्रतिवासुदेव और तीर्थपति श्रीनेमिनाथके संबंधोका वृत्तान्त, कृष्णजीकी 'पूर्णब्रह्म-परमात्मा-ईश्वर'- स्वरूपसे पूजा प्रारम्भका वाकया 'बद्रीपार्श्वनाथ' तीर्थोत्पत्तिका स्वरूप आदि अनेक ऐतिहासिक वृत्तांतोकी प्ररूपणा की गई है।

निष्कर्ष-इस प्रकार चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव वासुदेव, नव प्रतिवासुदेव, नव बलदेवका अति संक्षिप्त फिरभी रोचक चरित्र वर्णन करके इस परिच्छेदकी पूर्णाहुति की गई है।

द्वादश परिच्छेदः- ***श्री महावीर स्वामीके शासनकी गुर्वावलि*** -

इस परिच्छेदमें भ.महावीरके पट्टके सुशोभित रत्न श्री सुधर्मा स्वामीजीसे ग्रन्थकार श्रीमद् विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. पर्यंत सभी पट्ट परम्परकोंके गुणानुवाद रूप चरित्रचित्रण किया गया है, जिसे इस शोध प्रबन्धके 'पर्व प्रथममें' विस्तृत रूपमें प्रस्तुत किया है।

तत्पश्चात् तत्कालीन कई नूतन पंथ—गुजरातमें स्वामी नारायण, बंगालमें ब्रह्म समाज, पंजाबमें कूकापंथ-कोईलसे मौलवी अहमदशाहका नवीन फिरका, दयानंदजीका आर्य समाज, थियोसोफिस्टादिके नामोल्लेखके साथ द्वादश परिच्छेद और 'जैन तत्वादर्श' ग्रन्थकी परिसमाप्ति की गई है।

निष्कर्ष— जैन दार्शनिक सिद्धान्तोंकी प्रायः अधिकांश प्ररूपणा इस ग्रन्थमें की गई है, अतः इसे जैनधर्मकी 'गीता' कह सकते हैं।

अज्ञान तिमिर भास्कर

प्रारम्भ--प्रकाश सर्वदा निर्भयता, निःशंकता और विशालताका प्रतीक है, जबकि अंधकार, भय, शंका और संकोचका; अतः प्रकाश वहाँ अंधकार नहीं और अंधकार वहाँ प्रकाश नहीं। अज्ञानांधकारसे भव्योंके उद्धार हेतु इस ग्रन्थमें श्री आत्मानंदजी म.सा.ने सार्थक प्रयत्न करके अपने गुरुत्वको सिद्ध किया हैं। "आर्हत् धर्मना तत्वोनी जे भावना तेमना मगजमां जन्म पामेली, ते लेखरूपे बहार आवतां ज आखी दुनियाना पंडितो, ज्ञानीओ, शोधको, धर्मगुरुओ, शास्त्रज्ञो, लेखको अने सामान्य लोको ऊपर जे असर करे छे ते ज तेनी ससारता अने उपयोगिता दर्शाववाने पूर्ण छे" —प्रस्तावना - अज्ञान तिमिर भास्कर - पृष्ठ ८-५

प्रवेशिका-१ प्रथम खंडकी पूर्व भूमिकाके प्रारम्भमे विशाल जन समुदाय पर ब्राह्मणोके प्रभावके कारण ही नूतन प्रस्फुटित अन्य मतोका विलीन होना-इगित करते हुए ग्रन्थाकारश्रीने स्वय ग्रन्थ रचनाका प्रयोजन प्रस्तुत किया है-"वर्तमानकालमें परमतद्वारा मान्य-सत्य श्रद्धेयवेद-हिंसक यज्ञ प्रवृत्तिको लक्ष्यकर्ता अनेक विश्वमित्रादि क्षत्रिय तो कवष एलूषादि शूद्र दासीपुत्रों और ब्राह्मण ऋषियों द्वारा रचित मंत्र और ऋचाओंका व्यासजी द्वारा किया गया संकलन है। अतएव वेद अपौरुषेय नहीं है।

अतः जैनधर्मी सांप्रतकालीन चार वेदोंको मानते नहीं हैं और तत्कालीन लालची -स्वार्थी-पांखडी-हिंसक धर्म प्ररूपकोंको झूठे देव-गुरु-धर्म-शास्त्र आदिको छोड़कर सत्य-शील-संतोषपूर्ण जीवन व्यतीत करनेका उपदेश देनेका हेतु है।"

यहाँ वेदोंके मत्र-तंत्र-यज्ञादि हिंसक अनुष्ठानोंसे त्रस्त और जैन बौद्धोंकी अहिंसक प्ररूपणाओंके प्रचलनसे, दयानंदजी आदि अनेक वैदिकों द्वारा अनुचित-स्वच्छंद-कल्पित परिवर्तीत अर्थोंकी प्ररूपणा---मांसाहार परिहारकी स्वीकृति और दयानंदजीकी कल्पित मुक्तिकी मान्यताका उपहास एवं जैनधर्मके धर्म सिद्धांत विज्ञान-भूगोल-खगोलादिकी प्ररूपणाके उनके द्वारा किये गए खंडनका भी खंडन करके प्रतिवाद किया गया है, तो भक्ष्याभक्ष्य या गम्यागम्यके विवेक शून्य-भोग विलास और कुकर्ममे मस्त वाममार्गका प्रचलन-उनमें गोमांस भक्षणके निषेधसे अनुमानतः परवर्तीकालमे माना जा सकता है।

अंतमें जैनधर्मकी उदारता प्रदर्शित करते हुए, जैनधर्मीओंने अपनी जाज्वल्यमान-प्रचंड शक्तिके होते हुए भी किसीके सिर धर्म थोपनेकी जबरदस्ती नहीं की है। इसके समर्थनमें अनेक राजाओंके राज्यकालमें किये गये फरमान पेश करके, ब्राह्मणोंके पाखंड न स्वीकारने पर जैनोंकी 'नास्तिक' रूपमें बदनामी और वेदादि शास्त्र-श्रुतियोंके उद्धरण देकर नास्तिक-आस्तिक निष्कर्ष रूपमें उनकी ही नास्तिकता सिद्धिका प्रयास किया है।

प्रथम खंड--वेद स्वरूप--इसमें वेदरचना, वेद स्वरूप, वेदोंका इतिहासादिकी विस्तृत प्ररूपणा की गई है। डो. हेगके संशोधित 'ऐतरेय ब्राह्मण' अनुसार यज्ञ-सामग्री और क्रियाका उल्लेख करते हुए यज्ञ करनेका कारण, यज्ञविधि, पशुबलिकी विधि, होम और यज्ञसे फल प्राप्तिका वर्णन करके हिंसक यज्ञोंके स्वरूपका अनेक संदर्भ सहित उल्लेख किया गया है- यथा-सायनाचार्य कृत भाष्य, तैतरेय शाखाके छ अध्याय, कृष्ण यजुर्वेदके तैतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण की संहिता, ऋग्वेदका ऐतरेय ब्राह्मण, कात्यायन सूत्र, पुराण, सामवेद, उसकी संहिता और उसके आठ ब्राह्मण, अथर्ववेदके गोपथ ब्राह्मण, आश्वलायनके गृह्यसूत्रकी नारायण वृत्ति, आपस्तंबीय शाखाके ब्राह्मणोंके 'धर्मसूत्र'की 'हरदत्त' टीका, माध्यंदिनी शाखाके कात्यायन, लाट्यायनादिके सूत्र, मत्स्य पुराणका श्राद्धकल्प, महाभारतमें शिकारकी अनुमोदना, श्राद्ध विवेक, उत्तर रामचरित, पद्म-पुराणादिमें अश्वमेधादि यज्ञ और व्यासजी, वैशंपायन, शंकराचार्य, आनंद-गिरि आदि द्वारा हिंसा एव मांसाहारका समर्थन किया गया है। इस तरह मनुस्मृति आदि रचनाओंसे पूर्वकी रचनाओमे तो सम्पूर्ण हिंसक यज्ञोंकी प्ररूपणा की गई है। अतः यह कह सकते हैं कि, हिंसक प्ररूपणाओसे भरपूर वेदोमेसे अगर हिंसाको अलग कर दिया जाय तो वेदमे कुछभी न रह पायेगा। स्वतः सिद्ध हो जाता है कि ऐसे हिंसक वेदवचन कृपानिधान-दयावान-परमेश्वर नही बोल सकते हैं, अतः वेद अपौरुषेय या ईश्वरकृत नही हो सकते। ऐसी ऋचाये और सूक्तोके उद्धरण:-ऋग्वेद संहिता, शौनक ऋषि कृत 'सर्वानुक्रम परिशिष्ट परिभाषा', तैतरेय आरण्यक आदिमे हैं, जो उन्हे पौरुषेय सिद्ध करते हैं।

वेद रचना–मनुस्मृति आदिके रचनाकालमें जैन एवं बौद्ध धर्मके अति विशाल क्षेत्रमें प्रसारके कारण और "अग्नि, वायु, सूर्यादि देव नहीं केवल पदार्थ होनेसे उनकी पूजा *व्यर्थ है*" ऐसी सांख्य मतके शास्त्रोंकी प्ररूपणासे प्रजामें वैदिक धर्मके प्रति नफ़रत और अश्रद्धा उत्पन्न हुई। फलतः जनसमूहमे श्रद्धा संपादनके लिए उपनिषदकी रचना की गई लेकिन अंततः यज्ञ विधानोंके स्थान पर पूजाविधान और उपनिषदके अद्वैत ब्रह्मके बदले भक्तिमार्गीय द्वैत मतकी स्थापना हुई। हिंसक याज्ञिकी क्रियाओंका प्रचंड रूपसे खंडन किया गया, परिणामतः वेदधर्म लुप्त प्रायः हो गया। यही कारण है कि प्रजा की आस्था वेदके प्रति मोडनेके लिए ब्राह्मणोंने पुराणोंमें मनमानी तोड़जोड़ की और भ्रमजाल बिछाया गया कि, प्राचीनकालीन ऋषि पशु मारतें थे और उन्हें पुनः जीवित करनेका सामर्थ्य रखते थे। इस प्रकार ऋषि प्रणीत आर्षग्रन्थ और निबन्धादि पौरुषेय ग्रन्थ-स्मृति-पुराण-इतिहास-काव्यादिकी रचनायें पौरुषेय सिद्ध हुई। *वैदिक इतिहास*–भ. आदिनाथजीने इस अवसर्पिणी कालमें जैनधर्म प्रवर्तीत किया। तत्पश्चात् उनके पौत्र मरिचिके शिष्य कपिलनें 'षष्ठी तंत्र' रचकर जो उपदेश दिया वही परवर्ती शंख आचार्यके नामसे सांख्यमतके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। कालांतरसे जैनधर्म और चार आर्यवेदोंका व्यवच्छेद और शांडिल्य ब्राह्मण रूपधारी महाकालासुर और पर्वत द्वारा महाहिंसक यज्ञ और अन्य ब्राह्मणाभासों द्वारा चार अनार्य वेदोंकी रचना हुई। तदनन्तर व्यासजीने ऋषियोंसे श्रुतियोंका संकलन करके चार वेद रचे। याज्ञवल्क्यकी वैशंपायनादिसे लड़ाई होनेसे नया शुक्ल यजुर्वेद रचा गया। जैमिनी, शौनकऋषि, कात्यायनादि अनके ऋषि-आचार्यादिने मीमांसक, ऋग्विधान, सर्वानुक्रम आदि सूत्र रचे; इन्हीं सूत्रोंसे मनु-याज्ञवल्क्यादिनें स्मृतियाँ रचीं वेदके छ अंग-मुख-व्याकरण, नेत्र-ज्योतिष, नाक-शिक्षा, हाथ-सूत्र, पैर-छंद और कान-निरुक्त माने जाते हैं।

वैदिक ऋषियोंको सर्वज्ञ और उनके विरोधीको नास्तिक-वेद बाह्य-राक्षस आदि उपनाम देने परभी जैनधर्मकी प्रभाव वृद्धिसे प्रजामें ब्रह्म जिज्ञासा उत्पन्न होनेसे उपनिषद रचे गये। लेकिन उससे भी असंतुष्ट नैयायिक-वैशेषिकादि एक ही ईश्वरको माननेवाले मत चले, जिन्होंने शम-दम-श्रद्धा-समाधि आदि धर्म साधनसे प्रजामें आस्था दृढ बनवायी। ज्ञानको ही मोक्षका मुख्य साधन मानकर तीर्थयात्रा-कर्मकांडादिका विरोध किया। तत्पश्चात् जैनधर्म राज्याश्रित बननेसे उसकी प्रभाव वृद्धिके कारण उपरोक्त सभी मत लुप्त हुए। पुनः शंकराचार्यनें उसका उद्धार करके अद्वैतपंथ स्थापित किया। उसके खंडनके लिए नूतन उपनिषदोंकी रचना हुई। लेकिन थोडे ही समयमे पुराण-उपपुराणसे प्रतिपादित भक्तिमार्ग प्रचलित हुआ, जिसके अंतर्गत दो सप्रदाय-शैव और चार प्रकारके वैष्णव; ऐसे ही अन्य अनेक प्रकारकी उपासनाओंके-शिव, विष्णु, गणपति, राधाकृष्ण, राम, हनुमानादि अनेक सप्रदाय चल पडे जो आपसमे भी अनेक विरोधोके कारण खडन-मडन करते रहे, अतः उनके अपने भिन्न भिन्न शास्त्र, पहचान चिह्न-क्रियाये आदि अस्तित्वमे आये।

इनके झगडोंसे त्रस्त-व्याकुल कबीर, नानक, दादू, उदासी आदि मूर्तिपूजा विरोधी

पंथ निकले तो वैदिकोंने ही हिंसक यज्ञोंकी निंदा करनी प्रारम्भ करके यज्ञ रूपी नावको अदृढ़; यज्ञकर्ता-मूर्ख अज्ञानी-नरकगामी-अनंत भवभ्रमण करनेवाले, महादुःखी और हिंसक यज्ञोंको सदा-सर्वदा अनर्थकारी पापवर्धक माना एवं नारदजी, युधिष्ठिर, विचरव्यु आदि द्वारा "वह शास्त्र ही नहीं जो हिंसाका उपदेश दें"- कथन प्रमाणित किया गया।

जैन और बौद्धों द्वारा अहिंसा प्रचलनसे मांसाहार विषयक अनेक द्वंद्व चलें। फलतः कई लोगों द्वारा-वेद विहित हिंसामे पाप नही है, अन्यत्र अहिंसाका पालन करना चाहिए— "आप्यायन प्रोक्षणादिसे संस्कारित मांस हव्य और कव्य होनेसे भक्ष्य है"-प्ररूपणा की गई। ऐसी प्ररूपणावाले निर्दयी-अज्ञानी-हिंसक शास्त्रोंके, श्री दयानंदजी आदिने स्वकपोल कल्पित-नवीन-झूठे-असमंजस अर्थ करके उन वेद-पुराण-उपनिषद-स्मृति-महाभारत-शंकरविजयादिमें प्ररूपित हिंसाको छिपानेका व्यर्थ प्रयत्न करके पूर्वाचार्योंको भी मृषावादी बना दिया है। इसके अतिरिक्त 'वेद भाष्य भूमिका'में दयानंदजीने पतंजलिके योगशास्त्र, गौतमके न्यायशास्त्र, व्यासजी और बदरजीके वेदान्त-ऋग्वेद-यजुर्वेद, एवं जैमिनि-याज्ञवल्क्य-बादरायणादिके मतानुसार और उपनिषदके विपरित अर्थ करके बारह प्रकारकी मुक्तिका स्वरूप वर्णित करते हुए उसकी प्राप्तिके उपाय सूचित किये हैं।

तदनन्तर दयानंदजीकी स्वयंकी मोक्ष विषयक मान्यताका निरूपण किया है। दयानंदजी द्वारा उद्धृत मोक्ष विषयक—व्यासजी, उनके पिता और शिष्य-तीनोंके असमंजस अभिप्रायको लक्षित करके तीनोंके भिन्न-भिन्न अभिप्रायसे वेदमें मुक्तिकी प्ररूपणा ही असमंजस है— ऐसा सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त दयानंदजीके मतानुसार "मुक्तजीव लोकालोकमें सर्वत्र विचरण करते हैं।"-इस उक्तिके लिए सात विभिन्न पक्ष बनाकर उसका खंडन करते हुए उसे युक्ति विकल और प्रेक्षावानोंके लिए अमान्य निर्णित किया है। उनके द्वारा प्ररूपित ॐकारके अर्थका खंडन करते हुए चुनौतिके रूपमें विश्वके किसीभी शब्दकोशमें ऐसे 'उपहासजनक' अर्थका निषेध किया है। ऐसे अर्थग्रहण करनेसे परमात्माके सर्व उत्तम गुण असिद्ध हो जाते हैं। प्राचीन वेदमतानुसार ॐकारमें—रजोगुण-विष्णु, सत्त्वगुण-ब्रह्मा, तमोगुण-शंकर—स्थित मानने से ॐकारका तीन खंडोंमें विभाजन हो जाता है जो अयथार्थ है। अतः इन सभी भ्रमयुक्त अर्थोंकी शुद्धिके लिए जैन मतानुसार ॐकारका यथार्थ अर्थ प्ररूपित किया है-यथा -पंचपरमेष्ठि स्थित ॐकार---अ=अरिहंत अ=अशरीरी, आ=आचार्य, उ=उपाध्याय, म्=मुनि---इन पांचोंके गुण स्थित, उत्कृष्ट उपास्योके प्रथमाक्षरसे बननेसे अर्थ समुच्चयसे एकता और यथार्थ-सत्य अर्थकी प्रतीति होती है, और उनके १२+८+३६+२५+२७=१०८ गुणोके कारण मालाके १०८ मोतीकी परिकल्पना भी यथार्थ सिद्ध होती हैं।

श्री दयानदजीने अनेक मतोको सकलित करके-जीर्ण श्रुति-सूत्रोके मनघडत और प्रमाण बाधित अर्थोंको लेकर 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रंथ रचना की है, जिसमे वेद-उपनिषदादिके अर्थको मिथ्या ठहराकर ईश्वरके केवल व्युत्पत्तिजन्य पचासो नाम लिखे हैं, उसे शब्दशक्ति

ग्रहणकी अन्य योग्यताओंकी सान्निध्यतासे खंडित करके परमात्माके यथार्थ-सार्थक अनेक नामोंका उल्लेख करते हुए सृष्टिके सर्जनका खंडन और प्रवाहसे अनादि शाश्वतताका मंडन किया गया है। 'सत्यार्थ प्रकाश'में जैन सिद्धान्तोंकी उटपटांग प्ररूपणाका एवं नये 'सत्यार्थ प्रकाशमें' भी जैन-बौद्ध-चार्वाक आदिके सिद्धान्तोंका बेमेल-भेल-संभेलका प्रत्युत्तर देकर दयानंदजीकी झूठी प्रतारणाका पाखंड और मिथ्याभिमानका पर्दाफास किया है। जैन सिद्धान्त स्याद्वाद-सप्तभंगीका खंडन, काल-संख्या, अंकोकी गणित विधि-भूगोल-खगोलादि विषयक मिथ्या प्ररूपणायें, जीवोकी आयु-अवगाहना-स्वर्ग या मोक्षप्राप्ति विषयक भ्रम आदि अनेक शंका समस्यायें-कृष्णके नरकगमनकी प्ररूपणाकी आपत्ति आदि का प्रमाणभूत-युक्ति युक्त तर्कों द्वारा प्रत्युत्तर देते हुए दयानंजीके मूर्तिभंजक रूपके आडम्बरकी स्पष्टता करते हुए अनेक उदाहरणों द्वारा उन्हें परोक्ष रूपसे मूर्तिवादी सिद्ध किया है।

निष्कर्ष— इस तरह ईश्वर विषयक वेदोंकी प्ररूपणा, वैदिक इतिहास, हिंसक यज्ञ, विपरित वेदार्थ करनेवाले श्री दयानंदजी आदिके खंडनोंका खंडन-मुक्ति विषयक चर्चा, ॐकारका यथार्थ अर्थ आदि अनेक विषयोंके विश्लेषण इस प्रथम खंडमें किये गये हैं।

प्रवेशिका (खंड-२):–*जैन इतिहास परिचय*— जैनधर्मके माहात्म्य एवं उत्तमता सिद्ध करनेवाले जैनधर्मोत्पत्ति-ऐतिहासिक उपयोग-प्रमाणादिकी प्ररूपणा करते हुए संसार स्वरूप-द्रव्यार्थिक नयसे अनादि-अनंत (शाश्वत रूपमें) प्रवहमान और पर्यायार्थिक नयसे समसमयमें उत्पत्तिवान-नाशवंत भी है— प्रस्तुत किया है। (यहाँ कालस्वरूप, तीर्थ-तीर्थंकर-तीर्थंकरत्वका स्वरूप, कर्म और निमित्तोंको ही फल प्रदाता ईश्वर रूप मिथ्या-मान्यतादिके तत्त्व जिज्ञासु-माध्यस्थ बुद्धिवानोंको स्वीकार्य रूपमें पेश किया है।

उत्तम जैनधर्मके अधिकतम प्रचार-प्रसारके अभावके प्रमुख कारणभूत वर्तमानमें जैन प्रजामें उद्भावित प्रमादजन्य अज्ञान, राज्याश्रयका अभाव, जैन सिद्धान्तोंकी गहनता और क्रिया-तपादिके अनुष्ठानकी कठिनताकी चर्चा करते हुए उसे दूर करने के लिए-प्रचार, प्रसारके लिए प्राचीन ज्ञानभंडारोंका जीर्णोद्धार, संस्कृत-प्राकृत भाषाका प्रचार-प्रसार, एवं स्वीकारकी प्रवृत्ति करनेकी प्रेरणा दी है।

तत्पश्चात् जैन इतिहासकी प्ररूपणा करते हुए युगलिकयुग, हिंसक यज्ञ आर्य-अनार्यवेद, अन्य अनेक मतोत्पत्ति, बौद्ध धर्मका प्रचलन, जैन ग्रन्थोंकी तवारिख सहित सिलसिलेवार प्ररूपणा, पूर्वाचार्योंका परिचय पंचांगी रूप धर्मशास्त्रोंकी विषयगत विशालता और उसकी महत्त्वपूर्ण उत्तमताका परिचय दिया है। जैन सिद्धान्तानुसार द्रव्यसे भेदाभेद रूप अनादिकालीन द्रव्यशक्तिको ही परमतवादीका अज्ञानतावश सगुण ईश्वर, परमब्रह्म माया प्रकृति आदि नामसे पहचानना, अथवा अनंत गुणधारी सिद्ध परमात्माको नहीं लेकिन अठारह दोष युक्त देव मानना, सिवाय अरिहंत-सिद्ध, अन्य देवोमे देवत्व योग्य गुणाभावसे जैनोका अन्य देवोको देवरूप न माननेके कारण 'नास्तिक' उपनाम या अवहेलना सहना, यथार्थ आत्म स्वरूपकी प्राप्तिके लिए जैनदर्शनकी सर्वांग संपूर्णता आदि अनेक

विषयोंकी प्ररूपणायें की हैं। जैन-जैनेतर ऐतिहासिक, धार्मिकादि अनेक शास्त्र प्रमाण, प्राचीन प्रतिमाके लेख, ताम्रपत्रीय लेखादि अन्य सामग्रीसे *प्राचीनता* और जैन परंपरानुसार पूर्वापर तीर्थंकरोंके चरणकरणानुयोग एवं कथानुयोगकी प्ररूपणामें भिन्नता, फिरभी समान सैद्धान्तिक स्वरूपसे नूतन ग्रन्थो द्वारा परंपरासे शाश्वत धर्मके धर्मग्रन्थोंकी *अर्वाचीनता* प्रदर्शित की गई है।

भ. महावीरकी आतिशायी वाणीकी विशिष्टतायें, देशनामें अर्धमागधीका प्रयोग-अन्य कई रचनाओंमें अन्य भाषा प्रयोग-जैन ग्रन्थोंकी भाषा प्राकृतके तीन प्रकार और उन सब पर किये गए दयानंदजीके आक्षेपोंका प्रतिवाद और प्रमाण-युक्तियुक्त प्रमाणसे उसकी स्वतंत्रतां और प्रमाणिकता प्रमाणित की है। तदनन्तर वैदिक हिंसा और जैनी अहिंसाके वैधर्म्यके कारण वेदोमें जैनधर्मके उल्लेखका अभाव दर्शाते हुए हिंदुओंकी, क्रोस पर लटकती ईसा मसीहकी, सिया मुस्लिमोंके ताबुत-डुलडुल घोडा-इमामोंकी लाशकी प्रति-कृतियाँ, हाजियोंका पत्थरको बोसा देना, परमेश्वर कृत पुस्तककी पूजा-सम्मान, -आदि द्वारा मूर्तिपूजाके विरोधीके मूर्तिपूजा-रूप भावसे; तथा मूर्तिभंजक ओसवालादि जातियोंकी उत्पत्ति कथासे मूर्तिपूजाका मंडन किया गया है। साथ ही मूर्तिपूजासे प्राप्त आत्मिक भाववृद्धि आदि लाभ और उसका महत्त्व भी प्रस्तुत किया गया है।

पश्चात् जीवोंकी आयु, अवगाहना, तीर्थंकरोंके बीच कालांतर-प्रमाणादि अनेक तथ्योंको कठोपनिषद तौरेत आदि धर्मग्रन्थोंके संदर्भोंसे, तर्कबद्ध सिद्ध करते हुए, जैनधर्मके आठ निह्नव, ढूंढक मतकी तवारिख, अन्य सभीमत-संप्रदायके प्रवर्तक साधुओंकी ओर इंगित करते हुए, जैनधर्मके ही सैद्धान्तिक प्ररूपणायें-मूर्तिपूजन-आदिमें समान श्रद्धालु जीव, समाचारीमें भिन्नताके कारण पूनमिया, अंचलिया, सार्ध पूनमिया, आगमिया, खरतर, पार्श्वचन्द्रादि अनेक गच्छ-संप्रदाय आदिमें विभक्त होते गए उसे पेश करके अंतमें स्थानकवासीओंका स्वरूप और परंपराका निर्देशन करवाते हुए द्वितीय खंडकी प्रवेशिका पूर्ण की है।

द्वितीय खंडः *आराधकके इक्कीसगुण*--दस प्रकारसे दुर्लभ ऐसे उत्तम मनुष्य जन्म प्राप्त करके, सद्धर्मकी प्राप्ति और उसका आचरण अति दुर्लभ है। इस दुर्लभ एवं अचिंत्य चिंतामणी तुल्य धर्म प्राप्तिके योग्य आत्माका निम्नांकित इक्कीस गुणयुक्त होना आवश्यक है-जिनका विशिष्ट रूपसे लेखकने वर्णन किया है। यथा-कोई भी धर्मात्मा अक्षुद्र, रूपवान, सौम्य-प्रकृति, लोकप्रिय, अक्रूर-चित्त, भीरू, अशठ, सुदाक्षिण्य, लज्जावान् दयालु, माध्यस्थ, सोम-दृष्टि, गुणानुरागी, विकथा-त्यागी, सत्कथाकारी, सुपक्ष युक्त, सुदीर्घदर्शी, विशेषज्ञ, वृद्धानुग, विनीत, कृतज्ञ, परहितकारी, एव लब्ध-लक्ष्य (नूतन ज्ञानप्राप्ति योग्य)होने पर शीघ्र आत्म कल्याण कर सकता है। यहाँ लोकविरुद्धत्वके अतर्गत सप्त व्यसनोंकी विस्तृत चर्चा; छ निकायके जीवोंकी रक्षान्तर्गत अहिंसा व्रत द्वारा ही अन्य चार व्रतोंकी रक्षा का विशिष्ट स्वरूप, हिंसाका स्वरूप और अन्नाहार एव मांसाहारमे भक्ष्याभक्ष्यपना, चार विकथाका स्वरूप, विनयके पाच भेद, दो प्रकारका औपचारिक विनय और उनके उपभेद आदिका विशद रूपमे विश्लेषण किया गया है। ये इक्कीस गुण धर्म प्रासादकी मजबूत नींव या योग्य भूमिमे

योग्य बीज रूप माने जाते हैं। जघन्य दस; मध्यम; या उत्कृष्ट इक्कीस गुण प्राप्तिसे धर्मकरणी शुद्ध-विशुद्धतर-विशुद्धतम बनती जाती है।

उपरोक्त इक्कीस गुण प्राप्त धर्माराधक जीवको कैसा धर्म आचरणीय है इसका निर्देश श्रावक और साधुका स्वरूप, भावश्रावक और भावसाधुके लक्षणादिके वर्णन द्वारा करते हुए तीन प्रकारकी आत्माका स्वरूप वर्णित किया गया है <u>*श्रावकका स्वरूप*</u>--श्रावक दो प्रकारके (i) आस्तिक-विनयवान-धर्मार्थ प्रयत्नवान् अविरित श्रावक और (ii) प्रतिदिन सुगुरु मुखसे धर्मोपदेशमें संप्राप्त दर्शनादि रत्नत्रय समाचारी रूप जिन वचन सम्यक् उपयोग सहित श्रवणकर्ता देशविरतिधर श्रावक। <u>*सर्व विरतिधर साधुका स्वरूप*</u>--आर्यदेश-शुद्ध जाति-कुलोत्पन्न क्षीण पाप कर्मा, निर्मल बुद्धिवान्, मनुष्य भवकी दुर्लभता-लक्ष्मीकी चंचलता-संसारका भयंकर स्वरूप ज्ञात करके उनसे विरक्त बना हुआ, अल्प कषायी, विनीत, सुकृतज्ञ, श्रद्धावान्, प्रशम-उपशम गुणधारी व्यक्ति हों। 'स्थानांग" आगमानुसार श्रावक या साधु—नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव-चार निक्षेपे आराधने योग्य हैं। *भाव श्रावकके* चार भेद-आदर्श (आरिसा) सदृश, पताका सदृश, वृक्षके ठूंठ सदृश और खरंट सदृश-इनके लक्षणोंको लक्षित करते हुए प्रथम और अंतिम भेदवाले श्रावक मिथ्या द्रष्टि होने पर भी जिनपूजादि व्यवहार पालन करनेके कारण उन्हें व्यवहार नयसे श्रावक माना हैं। *भाव श्रावकके क्रियागत छ लक्षण*-(१) चार प्रकारके कृतव्रतकर्मा (२) छ प्रकारसे आयतन सेवी, ऐसे शीलवान, (३) पांच प्रकारसे गु॰ वान्, (४) गुणभंडार-गुणज्ञ गुरुओंकी, चार प्रकारसे भक्ति-वैयावृत्त्यकर्ता (५) चार प्रकारसे ऋजु व्यवहारी, और (६) छ भेदोंसे प्रवचन कुशल—भाव श्रावकके ये छ लक्षण दर्शाते हुए <u>*भाव श्रावकके भावगत सत्रह लक्षण*</u>-का स्वरूप सुंदर ढंगसे समझाया है।-यथा-स्त्री, इन्द्रिय, अर्थ(धन), संसार, विषय(वासना), आरम्भ-समारंभ और गृहवास-आत्माके अहितकारी-का त्यागी अथवा स्ववशकर्ता, सम्यक्त्वी, धर्म सिद्धान्तको बुद्धि-तुलासे समीक्षित करके स्वीकारनेवाला, चैत्यवंदनादि सर्व क्रिया आगम प्रणीत ही करनेवाला, तीन प्रकारका दान-दो भेदसे शील-बारहविध तप और भावादि चतुर्विध धर्ममें प्रवृत्त, विहित-हित-पथ्य धर्मोपदेश, जिनपूजादि सत्प्रवृत्तिमें लौकिक लज्जा न माननेवाला, सांसारिक पदार्थमें अरक्त-निस्पृह, मध्यस्थ, नश्वर पदार्थोंकी आसक्ति-प्रतिबंधका त्यागी, भोगोपभोगमें भी दाक्षिण्यताके कारण मजबूरीसे प्रवृत्त, निराशंस गृहवास पालक-निर्लेप, संसारी भावश्रावक, संसार त्यागके लिए तो अशक्त लेकिन संसार त्यागकी आसक्ति रखता हुआ, द्रव्य साधु समान होता है-यथा-"मिउ पिंडो दव्व घडो, सुसावओ तह दव्व साहुत्ति।" याने मिट्टीपिंड-द्रव्यघट है, वैसे साधुत्वका इच्छुक-भाव श्रावकके गुणोपार्जित-उनमे स्थित भावश्रावक भी द्रव्य साधु ही है।

भाव साधुका स्वरूप—भाव साधुमे सात लक्षण दृष्टि गोचर होते हैं-सकल मार्गानुसारी क्रियाधारक, अनभिनिवेश (आग्रह रहित), सप्रति श्रद्धाप्रवर (चार प्रकारसे श्रुतचारित्रधर्ममे श्रद्धावान्), प्रज्ञापनीय, सप्रति क्रियामे अप्रमत्त यथाशक्य विविध तपादि अनुष्ठानोका आचारी गुणानुरागी एव गुर्वाज्ञाधारक। यहाँ दो प्रकारके मार्गका स्वरूप, स्थानांगाधारित पाच प्रकारके व्यवहार मैत्र्यादि चार भावना स्वरूप, गीतार्थ गुरुके छत्तीस पकारसे छत्तीस गुणोमेसे तीन प्रकारके छत्तीस गुणोका वर्णन,

गुरुकुल-वासके और गुरुकुल-त्यागके लाभालाभ, गुरु-शिष्यके सम्बन्धादिको भी विवरित करते हुए उपरोक्त सात लक्षणधारी भाव साधुको सुदेवत्व, सुमनुष्यत्व, सुजाति स्वरूपादि की प्राप्ति और परम्परासे मुक्तिपद प्राप्तिकी प्ररूपणा की गई है।

जैन मतानुसार आत्माका स्वरूप और प्रकार--जीवात्मा स्वयंभू-अनादि-अनंत-अरूपी-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श रहित एक एक प्रदेश भी अनंत शक्तिमय एवं अनंतज्ञानमय ऐसे असंख्य प्रदेशवाले जीवके प्रत्येक आत्म प्रदेश पर आठ प्रकारके कर्मोंकी प्रत्येककी अनंत अनंत कार्मण वर्गणासे आच्छादित होनेसे शरीर व्यापी, संख्यासे अनंतानंत-चैतन्य स्वरूपसे एक समान (लेकिन एक आत्मा सर्वव्यापक नहीं), कर्मकाकर्ता कर्मविपाक-भोक्ता, कर्मबंधक, कर्मनिर्जरक, निर्वाणपदप्रापक, कर्मसहित-कथंचित् रूपी और कर्मरहित-कथंचित् अरूपी, चौदह राज-लोकमें ५६३ जीव स्वरूपोंसे चौर्यासी लक्ष जीव-योनि और चार गतिमें स्वकर्मानुसार प्राप्त होता हुआ परिभ्रमण करता है तथा आराधना-साधनाके योग प्राप्त होने पर उत्तरोत्तर गुणस्थानक प्राप्त करता हुआ सर्व कर्मक्षय करके मुक्ति प्राप्त करता है।

यहाँ आत्मा-परमात्माका स्वरूप, सृष्टि सर्जन-संचालन, कर्म-व्यवस्था, आत्मिक शक्ति, पुण्य-पाप स्वरूप, आत्मा परमात्माकी व्यापकता एवं स्थितित्व, संसारी जीवके-५६३ भेद आदि अनेक विषयोंकी अतिसंक्षिप्त-फिरभी न्याय पुरःसर-युक्तियुक्ततासे प्ररूपणा करके श्री हेमचंद्राचार्यजी म. कृत 'महादेव स्तोत्र' के अनुसार बहिरात्मा-अंतरात्मा-परमात्मा-तीन प्रकारके आत्माका विवेचन किया गया है-यथा- "परमात्मा सिद्धि संप्राप्ता, बाह्यात्मा च भवांतरे ।

अंतरात्मा भवेद्देह, इत्येवं त्रिविधः शिवः ॥"

मिथ्यात्वादिके उदयसे इष्टानिष्टमें, राग-द्वेषयुक्त, बुद्धिवान, भवाभिनंदी जीवात्मा '*बहिरात्मा*' है। तत्त्वज्ञानमें श्रद्धाधारी, कर्म स्वरूप-ज्ञाता, ज्ञानमय-सदा अखंडित आत्मद्रव्यका अंतर भावसे चिंतक, परभावसे दूर-स्वरूप रमणमें रममाण (बारहवें गुणस्थानकवर्ती) जीवात्मा "*अंतरात्मा*" मानी गई है। और तेरहवें गुणस्थानकवर्ती केवली-देहधारी शुद्धात्मा एवं पूर्णायुष्य होने पर देहरहित-अशरीरी सिद्धात्मा-(अर्थात् शुद्धात्मा और सिद्धात्मा दो रूपमें) "*परमात्मा*" स्वरूप निरूपित किया गया है।

अंतरात्मा ही तेरह-चौदह गुणस्थानक स्पर्शते हुए शैलेशीकरणसे सर्वकर्ममुक्त होनेसे शुद्धात्मा-सिद्धात्मा-परमात्मा बन जाती है। अतः परमात्मा-परमेश्वर होनेके पश्चात् आत्मा, अपना सच्चिदानंद, अमृतमय, आत्म स्वरूप-सुख छोडकर विषयजन्य शारीरिक-सासारिक सुखकी, तन-मनके अभावके कारण, कभी वाछना नही करता। अतएव ऐसे वीतराग ही देवबुद्धि करके मुक्ति प्राप्त हेतु आराध्य है।

निष्कर्ष---बिना आत्मबोध मनुष्य, देहधारी शृंग-पूछ रहित-पशु तुल्य होता है क्योंकि आहार-निद्रा-भय मैथुनादि सर्व संज्ञा दोनोमे तुल्य रूपमे दृश्यमान होती है। जब मनुष्यको आत्मबोध हो जाता है तब उसके लिए सिद्धपद अत्यन्त समीप है। वह प्रयत्न करने पर सच्चिदानंद,

पूर्णब्रह्म स्वरूप, अनंत ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख-शक्ति प्राप्त होकर मोक्षमहलके अतीन्द्रिय सुखास्वाद करता है।

अंतमें ग्रन्थकार श्री आत्मानंदजी म.सा. अंतिम मंगल रूप शासन पति भगवान महावीर स्वामी, गौतम गणधर, आद्य पट्टाधिप सुधर्मा-स्वामी और परवर्ती अनेक प्रभावक पट्ट परंपरक पूर्वाचार्योंकी गुरु प्रशस्ति एवं ग्रन्थ रचना काल-स्थान-कारण, और ग्रन्थ पठन-श्रवणके लाभादिको प्ररूपित करते हुए 'अनुष्टूप' छंदके सड़तीस श्लोकोसे ग्रन्थकी परि समाप्ति करते हैं।

--: सम्यक्त्व शल्योद्धार :--

ग्रन्थ रचना हेतु-ग्रन्थारम्भमें मंगलाचरण करते हुए इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचनाका उद्देश्य स्पष्ट किया है-यथा-"दुष्ट-ढूंढकने लुप्त की हुई जिनेन्द्र मूर्तिको शास्त्रकी क्रोडों सम्यक् युक्तियों द्वारा भव्यके हृदयरूपी स्थानमें स्थापन करके, और समर्थ स्याद्वादको नमस्कार करके विश्वमें पीडित सम्यक्त्व रूपी मात्रमें व्याप्त शल्यके उद्धार हेतु इस ग्रन्थकी रचना की है।"

ढूंढक साधु जेठमलजीकी प्रगाढ मिथ्यात्व युक्त असत्य प्ररूपणासे भरपूर 'समकित सार' पुस्तक वि.सं. १९३८ में नेमचंद हीराचंद द्वारा प्रकाशित हुई; जिसके प्रत्युत्तर रूप-बिना किसी राग-द्वेषकी परिणति, केवल भव्यजीवोंको निर्मल सम्यक्त्वके स्वरूपके दर्शन करने और परोपकार हेतु, इस ग्रन्थकी रचना सं. १९४० में की गई और सं. १९४१ में गुजराती भाषामें एवं सं. १९५९ में श्री आत्मानंद जैन सभा-पंजाब; तथा सं. १९६२ में जैन आत्मानंद पुस्तक प्रचार मंडल-दिल्ही, द्वारा-हिन्दीमें प्रगट की गई। इस ग्रन्थमें 'समकित सार' निहित कुल छियालीस प्रश्नोत्तरके प्रत्युत्तर दिये गये हैं।

'समाकित सार' के प्रश्नोत्तरके स्वरूपसे ही किसीभी सत्यवादी मूर्तिपूजक जैनका खून खौल उठना स्वाभाविक था; अतः उन प्रश्नोंत्तरके लिए, सत्यकी प्रतिमूर्ति आचार्य प्रवरश्रीकी कलम कैसे चूप रह सकती थी? मानो, मजबूरन मुखरित हो उठी। उनकी लेखीनीने ढूंढक मतको वेश्या या दासीपुत्र-तुल्य सिद्ध करके सभी विपरित प्ररूपणाओंका आगम या पूर्वाचार्य संचित ग्रन्थाधारित प्रत्युत्तर देनेका भरसक प्रयत्न किया है।

प्रथम प्रश्नान्तर्गत-ढूंढक मतोत्पत्ति-परम्परा-साधुवेश-दीक्षाप्रदानादि अनेक आचार; साधु समाचारी और दैनिक व्यवहार; परम्परागत चतुर्विध संघ सलग्न तपाराधना-साधना-विविध क्रियानुष्ठान रूप उपासना-सात क्षेत्र-व्यवस्था आदि अनेक प्रकारके आचार विचारोकी कपोल-कल्पित प्ररूपणाका मुहतोड प्रत्युत्तर देते हुए, सत्य प्ररूपणाका शास्त्राधारित प्रमाणोसे करणीय कृत्योका स्वीकार भी किया गया है। तत्पश्चात् ढूढक साधु आचरित मनःकल्पित और शास्त्र-विरुद्ध-मिथ्याचार रूप विचित्र करणीको प्रदर्शित करनेवाले १२८ प्रश्नो-आचारोके लिए ललकारते हुए और उन सभी आचरणोका शास्त्राधारित प्रत्युत्तर मागते हुए सर्व सवेगी मुनियोकी सर्वत्र एक समान समाचारीको आगम प्रमाणित और ढूढक साधुओकी मनमानी स्वच्छदता युक्त भिन्नभिन्न समाचारीको

आगम विरोधी प्रमाणित किया है। पैंतालीस आगममेंसे ढूंढक मान्य बत्तीस आगमबाहय और-शेष तेरह आगम और पंचांगीमें प्ररूपित अनेक सैद्धान्तिक-आचार विषयक-कथानुयोगाधारित २०४ प्ररूपणा-अधिकारोंको मान्य करनेका कारण; एवं बत्तीस आगममें प्ररूपित साधुके उपकरण, प्रतिलेखन, पच्चक्खाण, पंचांगीकी मान्यता आदि अनेक विषय परत्वे विपरित व्यवहार-वर्तनके लिए प्रत्युत्तर मांगते हुए; जिनेश्वरकी वाणी रूप पंचांगीको अमान्य करना, यह जिनाज्ञा-भंग और जिनेश्वरकी अवहेलना रूप दर्शाकर, आगममें प्रथम दृष्टिसे दृश्यमान प्ररूपणाओंका परस्पर विरोधका कारण पाठान्तर, उत्सर्ग-अपवाद, नयवाद, विधिवाद, चरितानुवाद, आदि वाचनाभेद है, जिसका विशद एवं गहन बुद्धिवान् निर्युक्तिकार तथा टीकाकारादिसे समाधान प्राप्त करनेकी प्रेरणा दी है।

द्वितीय प्रश्नोत्तरमें तारा तंबोलमें जैन मंदिरादिकी प्ररूपणा और बृहत्कल्प सूत्राधारित कौशांबी नगरीके स्थानादिकी चर्चा द्वारा आर्यक्षेत्र मर्यादाकी चर्चाको मिथ्या ठहराया है।

तृतीय प्रश्नोत्तरमें "जिन प्रतिमाकी असंख्यात साल पर्यंत काल स्थिति" की दैवी सहायसे शक्यता सिद्ध करके लौकिक व्यवहारमें भी ऋषभकूट पर असंख्यात सालमें होनेवाले अनेक चक्रवर्तीओंके नामकी स्थिति, भरतादि क्षेत्रोंमें अठारह क्रोडाक्रोड सागरोपम काल पर्यंत विद्यमान पूर्वकालकी बावडियाँ, पुष्करणी आदिके उदाहरण दिये हैं। यहाँ पृथ्वीकायादिकी आयु और पुद्‌गलकी स्थिति आदिकी भी स्पष्टता की है।

चतुर्थ प्रश्नोत्तरमें-स्याद्वाद शैलीसे समझने योग्य एषणीय-अनेषणीय आहार, आधाकर्म-दोषित लेने-देनेके स्वरूप एवं फल प्राप्ति-आदिकी चर्चा 'भगवती सूत्रादि'के संदर्भ-साक्षी देकर की गई है।

पंचम प्रश्नोत्तरमें-मुंहपत्तिका उपयोग किस तरह (मुख पर निरंतर बांधकर रखनेमें विराधनाका कारण); क्यों (संपातिम-त्रसकायिक जीव रक्षा हेतु); किस विधिसे (बोलते समय मुंहके सामने हाथसे पकड़कर) करना चाहिए-इसे श्री ओघनिर्युक्ति, आचारांगादिके संदर्भ युक्त समझाकर, "वायुकायिक जीवोंकी रक्षाके लिए निरंतर मुखपर मुंहपत्ति बांधनेकी" प्ररूपणा, सर्वशास्त्रोंमें ऐसे कथनके अभावसे, असिद्ध और महामिथ्यात्व स्थापित किया है।

छठे प्रश्नोत्तरमें---तीर्थंकरके कल्याणक भूमि-विहार भूमि आदि स्थानोंकी तीर्थयात्रा, और यात्रासंघ, परिणाम शुद्धिके लिए आगम प्रमाणसे सिद्ध करके जंघाचारण-विद्याचारणादि लब्धिधारी, अन्यमुनि और भक्तजनोंको भी तप-जप-संयम-ध्यान-स्वाध्यायादिकी वृद्धिकारक तीर्थयात्राकी उपकारकता दर्शायी गई है।

सातवें प्रश्नोत्तरमें- "जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति-सूत्रानुसार शत्रुंजय तीर्थकी अशाश्वतता" की प्ररूपणा के प्रत्युत्तरमें आचार्यश्रीने अन्य शाश्वत पदार्थोंकी न्यूनाधिक होने सदृश शत्रुंजयकी न्यूनाधिकता होने पर भी शाश्वतता सिद्ध की है।

आठवें प्रश्नोत्तरमें-"देवपूजावाची 'कयबलिकम्मा' शब्दकी सिद्धि"के लिए गृहस्थावस्थामें अरिहंत द्वारा सिद्ध-प्रतिमाकी पूजा- चारित्र अंगीकरण समय सिद्धको नमस्कार, राजप्रश्नीय-ज्ञाता सूत्रादिमें तुंगीया नगरीके श्रावक द्रौपदी, सूर्याभदेवादि द्वारा पूजा और अन्य अनेक ग्रंथोके संदर्भ दिये हैं। इस

प्रकार "कौतुक-मंगलके लिए कुरली करना"-अर्थका उपहास करके असिद्ध किया है।

नवमें प्रश्नोत्तरमें-'सिद्धायतन'का अर्थ 'शाश्वत अरिहंतगृह' किया है। इस अर्थकी गुण निष्पन्नता भी सिद्ध करके वैताढ्यके सिद्धायतन कूटके अर्थका विश्लेषण करते हुए इसी अर्थकी पुष्टि की है।

दसवें प्रश्नोत्तरमें- "श्री गौतम स्वामीजीका यात्रा हेतु सूर्य-किरण पकड़कर अष्टापदारोहण और १५०० तापसोंके केवलज्ञान"के अधिकारको असिद्ध करनेकी चेष्टावालोके, भगवती आदि सूत्रोंके उद्धरण देकर मुंह बंद किया है। तो "भगवंतने श्रेणिकादिको जिन मंदिर निर्माणका उपदेश नहीं दिया"-कथनको भी जिनमंदिर निर्माणके आवश्यकादिके उद्धरणसे सिद्ध किया है।

ग्यारहवें प्रश्नोत्तरमें-"अरिहंतका द्रव्य निक्षेपा भी वंदनीय होता है"-इसे नमुत्थुणं, लोगस्स, नंदीसूत्र (जिनमें ३४ अतीताचार्योंको द्रव्य आचार्य मानकर ही वंदना की है), आवश्यकादि सूत्रोंसे सिद्ध किया है।

बारहवें प्रश्नोत्तरमें-"तीर्थंकरोंके नाम–संज्ञा ही है-निक्षेपा नहीं; भाव निक्षेपा ही वंदनीय है, गृहस्थावस्थामें तीर्थंकर पूजनीय नहीं, द्रव्य निक्षेपा अवंदनीय, प्रत्यक्षकी भाँति प्रतिमा अपेक्षापूर्तिके लिए अक्षम होनेसे जिन प्रतिमा वंदन-पूजन योग्य नहीं, अजीव स्थापनासे लाभ नहीं भ.मल्लिनाथके स्त्रीरूप प्रतिमासे छराजाओंका कामातुर होना, अनार्योंको प्रतिमा दर्शनसे शुभध्यान न होना-आदि कथनोंसे नाम, स्थापना, द्रव्य निक्षेपा अवंदनीय हैं"-इस प्ररूपणाका खंडन करते हुए महानिशीथादि सूत्रोंके संदर्भ देकरके चारों निक्षेपा पूज्य-वंद्य-आराध्य सिद्ध किये हैं।

तेरहवें प्रश्नोत्तरमें- (१) "जिसका भाव निक्षेपा वंदनीय हो, उन्हींके शेष तीन निक्षेपे वंदनीय होते हैं"-इसे स्पष्ट करते हुए भरत चक्रीसे अद्यावधि यात्रासंघ, जिनमंदिर और जिनपूजाकी अविच्छिन्न परंपरा सिद्ध की है। (२) जिनेश्वर-तुल्य ही जिनप्रतिमा दर्शनसे अशुभ भावोंका उपशमन और शुभ भावोंका संचय होता है। (३) "वीतरागका नमूना साधु है, प्रतिमा नहीं"-इस कथनकी असिद्धि, वीतरागके राग-द्वेष रहित, आतिशायी अनंत पुण्यराशी और साधुका राग-द्वेष सहित (उनसे रहित होनेमें उद्यमवंत) और कमपुण्यवंत होना दर्शाकर जिनेश्वर तुल्य आराध्य जिन प्रतिमा ही हो सकती है, साधु नहीं-सिद्ध किया है।

चौदहवें प्रश्नोत्तरमें-"नमो बंभीए लिवीए"-का अर्थ "ब्राह्मी लिपिको ही नमस्कार होता है, उसके कर्ताको नहीं"-इस प्ररूपणाको "अनुयोग द्वार"दि सूत्रोंसे सिद्ध करते हुए जैसे जिनवाणी भाषा वर्गणाके पुद्गल रूप होनेसे द्रव्य है वैसे ब्राह्मी लिपि भी अक्षर रूप होनेसे द्रव्य है -ऐसा प्रतिपादित किया है।

पंद्रहवे प्रश्नोत्तरमें-लब्धिवंत मुनियोने रुचक द्वीप, मानुषोत्तर पर्वत, नदीश्वर द्वीपादिके विविध-चैत्योको जुहारते हुए जिन प्रतिमा वंदन किये है-इसे भगवती, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति आदि सूत्र-संदर्भोंसे सिद्ध करते हुए समवायागादि सूत्रानुसार 'चैत्य'का अर्थ, 'देवय चेइय'का 'देवरूप चैत्य' अर्थ और 'चैत्यवृक्ष'का 'चौतराबद वृक्ष' अर्थ सिद्ध किया है।

सोलहवे प्रश्नोत्तरमें-भ. महावीरके पास आनंद श्रावकके कल्प्याकल्प्यके नियम ग्रहणका समर्थन,

अन्यतीर्थीओंकी भी जिन प्रतिमामें देव-तुल्य मान्यता; अन्य तीर्थीओंके स्थानमें जिन प्रतिमा जैनों द्वारा ही अपूजनीय-अवंदनीय क्यों और कैसे;--इन सभीका स्पष्टीकरण करते हुए समवायांगानुसार आनंदादि अनेक श्रावकों द्वारा जिनमंदिर निर्माण-जिनप्रतिमा पूजन-आदि तथ्योंकी सिद्धि की है।

सत्रहवें प्रश्नोत्तरमें-उपरोक्त आनंद श्रावक समान अंबड़ तापसको लक्ष्य करके कई असत्य प्ररूपणायें की हैं इनका प्रत्युत्तर देते हुए-दोनोंके नियमोमें अंतर और उस अंतरके कारणोंकी स्पष्टता की गई हैं।

अठारहवें प्रश्नोत्तरमें-सात क्षेत्रान्तर्गत भरतचक्रीसे लेकर अद्यावधि अनेक श्रावकों द्वारा जिनमंदिर और जिनप्रतिमा निर्माणमें द्रव्य-धनके व्ययकी सिद्धि अनेक सूत्रोंके संदर्भ द्वारा करके, अन्य ज्ञानादि पांच क्षेत्रोंके लिए धन व्ययकी विधि-कारणादिकी अनुयोग द्वारादि सूत्र संदर्भसे अनेक युक्त-युक्तियोंसे चर्चा की गई है।

उन्नीसवें प्रश्नोत्तरमें-द्रौपदी द्वारा की गई जिन प्रतिमा पूजाका अनेक कारणोंसे निषेध किया गया है-यथा-द्रौपदीकी पूजामें सूर्याभदेवकी हीं भलामण, अन्य किसीने जिनपूजन किया नहीं, द्रौपदीने भी एक बार ही किया, द्रौपदीकी पूजा भद्रा-सार्थवाही जैसी होनेसे वह देवभी अन्य ही होनेकी शक्यता, स्त्रीको अरिहंतके संघट्टाका निषेध, पूर्व जन्ममें सात अयोग्य कार्य करना, पांच पतिका नियाणा करनेसे सम्यक् दृष्टि नहीं, उसके माता-पिताभी मिथ्यात्वी, पद्मोत्तरके घर उसका तप करना-जिनपूजा नहीं, अचेलक अरिहंतको वस्त्र पहनाना आदि अनेक कारणोंके अतिरिक्त अन्य कारण-राजगृहीमें जिन मंदिरका अभाव, द्रौपदीकी पूजा अवधिजिनकी होनेकी संभावना, जिनपूजामें षट्निकाय जीवोंकी विराधना अयोग्य, कोणिकका भी भाव तीर्थंकरको न पूजना, अन्य देवोंकोभी नमुत्थुणंसे वंदना करना-आदि अनेक कुतर्कोंका उत्तर ज्ञातासूत्र, उववाय, भगवती, दशाश्रुतस्कंध, प्रश्नव्याकरण, नंदीसूत्र, अनुयोगद्वार, उपासक दशांग, ओघनिर्युक्ति आदिसे अनेक सयौक्तिक स्पष्टीकरण देकर युक्तियुक्त विवेचनसे द्रौपदीका जिनप्रतिमा पूजनको सिद्ध किया गया है।

बीसवें प्रश्नोत्तरमें- सूर्याभदेव और विजयपोलीएके 'जिन प्रतिमा पूजन' विषय निषेधार्थ बीसों कुयुक्तियाँ प्रस्तुत करते हुए उत्सूत्र प्ररूपणा और मनघडंत मिथ्या सूत्रार्थोंका राजप्रश्नीय, जीवाभिगमादि सूत्रोंके उद्धरण देकर प्रत्युत्तर देते हुए सूर्याभदेव और उनकी शुभ क्रियाके निंदकको दुर्लभबोधि सिद्ध किया है।

इक्कीसवे प्रश्नोत्तरमे-उपरोक्त देवो द्वारा किया गया 'जिनदाढा पूजन'की निरर्थकताके कथनके कारणोका--'अधम्मिया' देवो द्वारा अथवा मिथ्या दृष्टि अभव्य देवो द्वारा जीत आचार-लौकिक व्यवहार या कुलधर्म रूप की गई जिन दाढा पूजा मोक्ष प्राप्तिका कारण नहीं बन सकती ऋद्धिवत नवग्रैवेयकका अभव्यत्वी देव-अभव्य सगम देव-तामली तापसका जीव इशानेन्द्र आदिके उपहासजनक आधारो पर जिनदाढा पूजाका निषेधका--प्रत्युत्तर जबूद्वीप प्रज्ञप्ति, अभव्य कुलक, भगवतीसूत्र, जीवाभिगमसूत्रादिके

संदर्भसे अनेक युक्तियुक्त तर्क द्वारा उपरोक्त देवोंका जिनप्रतिमा पूजन और जिनेश्वर दाढा ग्रहण एवं उनका पूजन सत्य सिद्ध किया है।

बाईसवें प्रश्नोत्तरमें-"जैसे स्त्रीका चित्र न देखना चाहिए वैसे ही 'प्रश्न व्याकरण' अनुसार जिनमूर्तिके दर्शनका भी निषेध है-" इस कथनकी पुष्ट्यार्थ अनेक कुतर्क---जिनप्रतिमा दर्शनसे किसीको प्रतिबोध नहीं हुआ-आदिका आर्द्रकुमार-शय्यंभव सूरि म. आदिके सम्यक्त्व प्राप्तिके उदाहरणसे प्रतिषेध करके समवायाग-भगवती-नंदीसूत्र-अनुयोग द्वारादि सूत्रानुसार निर्युक्तिकी मान्यताको सिद्ध करते हुए एवं निर्युक्ति द्वारा जिन प्रतिमा दर्शनसे भव्योंको प्रतिबोध और सम्यक्त्व प्राप्ति सिद्ध किये हैं।

तेईसवें प्रश्नोत्तरमें-जिनमंदिर या जिनप्रतिमा निर्माणकर्ता मंदबुद्धि या दक्षिण दिशाका नारकी होना; और म.महावीरने श्रेणिकको नरकगति निवारणके लिए जिनमंदिर निर्माणकी प्रेरणा न देकर अन्य चार करणीकी प्रेरणा दी-अतः 'जिनमंदिर नही बनवाना चाहिए'-इस प्ररूपणाका मुंहतोड़ प्रत्युत्तर देते हुए उनका 'देवकुल' शब्दका अर्थ 'सिद्धायतन' करनेको भी मिथ्या सिद्ध किया है।

चौबीसवें प्रश्नोत्तरमें-प्रश्न व्याकरणानुसार "साधु जिनप्रतिमाकी वैयावृत्त्य करें"-इस प्ररूपणाको विपरित्त बनाकर 'चेइयट्ठे'का अर्थ "ज्ञान"करके जो विपरित-प्ररूपणा की है, उसका प्रतिषेध ग्रन्थकारने 'उत्तराध्ययन' सूत्रके 'हरिकेशी' अध्ययन और स्थानांग-व्यवहार सूत्रादिके संदर्भ देकर किया गया है।

पचीसवें प्रश्नोत्तरमें—स्थानकवासी मान्य बत्तीस सूत्रके अतिरिक्त सर्व सूत्रोंका व्यवच्छेद; महानिशीथ आदि शेष सूत्रोंकी रचना परवर्तीकालकी है; नंदीसूत्रकी रचना चतुर्थआरेकी; साधु और श्रावकके वंदन-आचार-विधि; मंदिर न जानेके लिए बृहत्कल्पादिमें कोई प्रायश्चित्त नहीं है; भव्याभव्य-सर्व जीवोंका निश्चयसे चौदह राजलोकके सर्व स्थानोंमें उत्पन्न होना; सर्वदा उपयोगवंतके शास्त्र ही प्रमाण; देवर्द्धिगणिके लिखे शास्त्र प्रतीति योग्य नहीं; विशिष्ट ज्ञानियोंकी भी क्षति होनेकी संभावना; पंचांगी सूत्रोंके विविध ८५ विरोधाभास---इन सभीके नंदीसूत्र, बृहत्कल्प-अभव्य कुलकादि शास्त्रानुसार यथोचित प्रत्युत्तर लिखकर ढूंढक मान्य बत्तीस सूत्रोंमें भी अपेक्षायुक्त अनेक विरोधाभासोंको प्रमाणित करनेके लिए उपा. यशोविजयजी म. कृत "वीर स्तुति रूप हूंडी"के श्री पद्मविजयजी म. कृत बालावबोधको उद्धृत किया है।

छब्बीसवें प्रश्नोत्तरमे- "किसी भी श्रावकके प्रतिमा पूजनका उल्लेख शास्त्रमे नही है"-इस कथनके प्रत्युत्तरमे आचाराग, सूत्रकृताग, आदि इकत्तीस शास्त्रोके अनेक उदाहरण देकर; एव शत्रुजय-आबू-राणकपुर-आदि तीर्थ स्थानोके जिनमंदिर, सप्रति-आदिके बनवाये लाखो जिनमदिर-क्रोडो जिन प्रतिमाके प्रमाण देकर इस कथनको असिद्ध किया है।

सत्ताइसवे प्रश्नोत्तरमे-"जिन कार्योमे हिंसा होती है वे सर्व सावद्य करणीमे जिनाज्ञा नही है" -इस कथनके प्रत्युत्तरमे "स्वरूपे हिसा और अनुबधे दयामे जिनाज्ञा है"-ऐसे कई उदाहरणोको

आगम सूत्रोंसे उद्धरित करके उपरोक्त एकान्तवादी मतका खंडन किया गया है। दृश्यमान आश्रवके कारणोंमें भी शुद्ध परिणामसे निर्जरा होती है, और दृश्यमान संवरके कारणोंमें भी अशुद्ध परिणामसे कर्मबंध होता है--इसे जमालि आदिके शुद्ध चारित्र पालनादि अनेक शास्त्रोक्त उदाहरण देकर निरासित किया गया है।

अट्ठाइसवें प्रश्नोत्तरमें-जिनेश्वर भगवंतका द्रव्य निक्षेपा और *उनतीसवें प्रश्नोत्तरमें*-जिनेश्वर भगवंतके स्थापना निक्षेपा अवंदनीय होनेके आक्षेपके प्रत्युत्तरमें लोगस्स सूत्र (चउविसत्था) और दसवैकालिक सूत्राधार देकर दोनो निक्षेपा वंदनीय है-ऐसा सिद्ध किया है।

तीसवें प्रश्नोत्तरमें- "मूर्तिपूजक, जैनधर्मके अपराधीको मारनेमें लाभ मानते है"-इस प्ररूपणाको धर्मदासजी गणि कृत ग्रन्थसे और उत्तराध्ययन सूत्रके 'हरिकेशी' मुनिके उदाहरण द्वारा मिथ्या सिद्ध किया है। "गुरुओंको बाधाकारी जू.-लिखादिका भी निवारण करना चाहिए" इस कथनको भी, उनसे विशेष अशातनाका संभव न होनेसे अनावश्यक कहकर निरासित किया। दो साधुको जलानेवाले गोशालाके जिंदा रहनेको भाविभाव कहते हुए स्वयंके उपसर्ग-परिषह सहन करने और शासन पर आयी आपत्तियोंका निवारण करनेकी प्रेरणा दी है।

इकत्तीसवें प्रश्नोत्तरमें-महाविदेह क्षेत्रके बीस विहरमान जिनेश्वरके नामोंमें असमंजसताके कथनको, 'वे बीस नाम उनके मान्य सूत्रोंमें लिखे ही नहीं है' ऐसे आक्षेप सह यह कथन ही मिथ्या सिद्ध किया है।

बत्तीसवें प्रश्नोत्तरमें-'चैत्य' शब्दके साधु, तीर्थंकर, या ज्ञान-अर्थ किया गया है, उसे मिथ्या सिद्ध किया है, क्योंकि किसी कोष, व्याकरणादि ग्रन्थ, आगमादि शास्त्रमें कहीं इस शब्दका ऐसा अर्थ लिखा नहीं है। कोषादिमें चैत्यका अर्थ जिनमंदिर, जिनप्रतिमा या चौतरेबंद वृक्ष-सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त 'चैत्य'का अर्थ साधु करें तो इसका स्त्रीलिंगवाची शब्द क्या होगा? अतः यह अर्थ असिद्ध है-ऐसे भगवतीसूत्र, नंदीसूत्रादि अनेक सूत्रोंके उदाहरण देकर प्रमाणित किया है। "आरम्भके (पापके) स्थानोंमें तो 'चैत्य' शब्दका अर्थ प्रतिमा भी होता है"-ऐसे अनेक कथनमें तो उनकी स्पष्ट द्वेषबुद्धि प्रकट होती है।

तैंतीसवें प्रश्नोत्तरमें-"सूत्रोमें तप-संयम-वैयावृत्यादिमें धर्मकरणी और उससे फल प्राप्ति मानी है, लेकिन जिन प्रतिमाके वंदन-पूजनका फल नही दर्शाया"-इस कथनको आचारांग, उत्तराध्ययन, ज्ञातासूत्र, राजप्रश्नीय, आवश्यक सूत्रादिके उद्धरण देकर मिथ्या सिद्ध किया है। और जैसे भाव जिनको वंदना-नमस्कार करनेके लिए वे स्वय नही कहते-न उसके वे भोगी है फिरभी भक्त अपनी भक्तिसे करता है, वैसे ही द्रव्य जिनपूजामे भी भक्ति ही कारणभूत माननी योग्य है।

चौंतीसवें प्रश्नोत्तरमें-लोगस्स सूत्रका 'कित्तिय, वंदिय, महिया'-इनमे प्रथम दो को भावपूजा माना है लेकिन 'महिया'-जो द्रव्य पूजावाची होने पर भी उसे भावपूजा रूप ठहराया है यह मिथ्या है। यहा पुष्पपूजामे होनेवाली स्वरूप हिंसाका भी प्रत्युत्तर दिया गया है।

पैंतीसवे प्रश्नोत्तरमे-छजीव निकायके आरम्भ (विराधना) होनेके प्रसंगको लेकर 'आचाराग' सूत्रका

संदर्भ दिया है, उसे उसके यथार्थ अर्थ स्पष्ट करते हुए उसका प्रतिषेध किया गया है।

छत्तीसवें प्रश्नोत्तरमें-पांच विभिन्न आश्रवसेवी पांच विभिन्न जीवोंको समान फल, सम्यक् दृष्टिको चार प्रकारकी भाषा बोलनेकी भगवंतकी आज्ञा, तीर्थंकरका झूठ बोलना आदि अनेक मिथ्या कथनोंके प्रत्युत्तरमें आचारांग सूत्रकृताग, भगवतीसूत्र, प्रज्ञापना आदिके संदर्भ प्रस्तुत करके उन वचनोको असिद्ध किया है।

सडतीसवें प्रश्नोत्तरमें-"दयामे ही धर्म है, भगवंतकी आज्ञा भी दया मे ही है-हिंसा मे नहीं"- इसके प्रत्युत्तरमें त्रिकरण-त्रियोग शुद्ध दयापालक, फिरभीं भगवंतकी आज्ञाका उत्थापक जमालि एवं अन्य अभव्य जीवों आदिकी दुर्गति; विहार करते समय नदी उतरना; डूबते हुऐ जीव को, साधु पानीमें तैरकर बचालें-ऐसी जिनाज्ञा; शिष्योंका लोच-बरसते मेघमेंभी, स्थंडिलादि कार्यमें हिंसा होने पर भी जिनाज्ञाका आधार; धर्मरुचि अनगारका जिनाज्ञा-आराधनासे सर्वार्थसिद्ध विमानमें जाना आदि अनेक संदर्भोंसे जिनाज्ञा पालनका माहात्म्य दर्शाकर जिनाज्ञा पालनमे आलस्य और जिनाज्ञा विरुद्ध कार्यमें-उद्यम-दोनोंमें मिथ्यात्व सिद्ध करके उपरोक्त कथन 'दया में ही धर्म है......हिंसामें नहीं' मिथ्या सिद्ध किया है।

अडतीसवें प्रश्नोत्तरमें-अनेक कुयुक्तियोंको मिथ्या सिद्ध करनेके लिए और जिन प्रतिमा पूजनमे अनुबंधे दया ही हैं; एवं पूजा शब्द दयावाचक ही है-इसे सिद्ध करनेके लिए आवश्यक सूत्रके कूपके दृष्टान्तको उद्धृत करके और प्रश्न व्याकरणके संवर द्वारमें प्ररूपित दयाके पर्यायवाची ६० नामोंमें पूजाका उल्लेख और हिंसाके पर्यायवाची नामोंमें 'पूजा' नामोल्लेखका अनस्तित्व, हरिकेशी मुनि द्वारा वर्णित यज्ञकी स्पष्टता-और-महानिशीथके सूत्रपाठकी मिथ्या प्ररूपणाको विवेचित किया गया है।

उनचालीसवें प्रश्नोत्तरमें- "प्रवचनके प्रत्यनीकको हणनेमें दोष नहीं"-ऐसी उत्सूत्र प्ररूपणाको अनेक सूत्राधारित अनेक दृष्टान्त देकर असिद्ध किया गया है।

चालीसवें प्रश्नोत्तरमें-'संवेगी गुरुको महाव्रती और देव अव्रती मानते हैं'-इस कथनसे संवेगीको मिथ्या कलंक चढ़ानेका आक्षेप करते हुए गुरुविरहमे, गुरुकी स्थापना रूप अक्षकी स्थापनाको 'अनुयोग द्वार' आदि सूत्र साक्षीसे सिद्ध करते हुए अक्ष-स्थापनाकी आवश्यकताको, और श्रावक द्वारा अष्टप्रकारी द्रव्यपूजा एवं साधु द्वारा उसकी भावपूजाका अधिकार स्पष्ट किया गया है।

एकतालीसवें प्रश्नोत्तरमे- 'जिन प्रतिमा जिनेश्वर समान नही होती' इस मिथ्या कथनका 'देवयं चेइयंपज्जुवासामि', राजप्रश्नीयसूत्रके सूर्याभदेवकी धूप-पूजा-'धूव दाउण जिणवराण आदि उद्धरणसे दोनोकी तुल्यता सिद्ध की है। अभोगीको द्रव्यरूप भोग चढाना-आदि एव भाव-द्रव्य-स्थापना तीर्थंकरोका स्वरूप और भेदोको दर्शाकर उससे सम्बन्धित अनेक कुयुक्तियोका निवारण किया गया है।

बयालीसवे प्रश्नोत्तरमे "सर्विज्ञ मुनि गोशाला समान हैं"-इस कथनकी सिद्धिके लिए किये गए कुछ प्रलाप सदृश युक्तियोका अनेक युक्तियुक्त तर्कोंसे प्रत्युत्तर देते हुए दूढकोको ही गोशालामती

सिद्ध किया है। इससे भी एक कदम आगे उनको मुस्लिम समान (भक्ष्याभक्ष्य विवेकहीन-मूर्तिभंजक आदि रूपमें) सिद्ध किया है।

तैंतालीसवें प्रश्नोत्तरमें-'मुंहपत्ति मुंह पर बांधनी या हाथमें रखनी'-इसकी चर्चा करते हुए मृगापुत्रके उदाहरण द्वारा एवं अंगचूलिया, आवश्यक सूत्रादिसे एवं अन्य अनेक युक्तियुक्त तर्कसे मुंहपत्तिको निरंतर मुंह पर बांधनेका निषेध सिद्ध करके मुंहपति मुखके सामने बोलते समय हाथमें रखना सिद्ध किया है।

चौंतालीसवें प्रश्नोत्तरमें-"देव, जिनप्रतिमा पूजन करके संसार वृद्धि करते हैं।" इसके प्रत्युत्तरमें राजप्रश्नीय सूत्र आधारित पूजाफल---हित, सुख, योग्यता और परंपरित मोक्षफल प्रापक दर्शाकर आवश्यक सूत्रानुसार फल प्राप्ति भावानुसार सिद्ध की है।

पैंतालीसवें प्रश्नोत्तरमें-श्रावकके सिद्धान्त पठनके अनधिकारकी चर्चा करते हए भगवती सूत्रमें तुंगीया नगरीके श्रावकका, व्यवहार सूत्रमें सिद्धान्त ग्रहण करनेकी योग्यताका; प्रश्न व्याकरण, दशवैकालिक, आचारांग, निशीथ, स्थानांगादि अनेक सूत्रोंसे श्रावकको सूत्र-सिद्धान्त पठनका अनधिकारी सिद्ध किया है।

छियालिसवें प्रश्नोत्तरमें-"मूर्तिपूजक हिंसा धर्मी है"-इस मान्यताके प्रत्युत्तरमें 'दया' की आलबेल पुकारनेवाले हिंसाधर्मी ढूंढकोंकी हिंसक प्रवृत्तियोंको स्पष्ट किया है-पीनेके उपयोगके लिए उनके माने अचित पानीमें पंचेन्द्रिय-सम्मूर्च्छिम-बेइन्द्रियादि अनेक जीवोत्पत्ति युक्त पानीका उपयोग, बासी-सडा हुआ-द्विदल-शहद-मक्खन-कंदमूलादि भक्ष्याभक्ष्यके विवेक शून्य-भोजी, मुंहपत्ति निरंतर बांधे रखनेके कारण अनेक जीवोत्पत्ति, अशुचिकी शुद्धि भी न करना आदि अनेक आचारोंको स्पष्ट किया है।

निष्कर्ष-इस प्रकार इस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने अपने विशद और गहन अध्ययनके बल पर सत्य-शुद्ध-सैद्धान्ति प्ररूपणाओंका मंडन और जिनवाणी-जिनागम एवं गीतार्थ गुर्वादि रचित पंचांगी रूप अनेक शास्त्र विरुद्ध-मनघंडत-कपोल कल्पित-मिथ्या प्ररूपणाओंका खंडन करके भव्यजनोंको गुमराह होनेसे बचा लेनेका महान उपकार किया हैं। इस ग्रन्थके वाचन-मनन-मंथनसे अनेक साधु एवं श्रावकोंने मिथ्या राहको छोड़कर शुद्ध सत्यराहको अपनाया है।

--- तत्त्व निर्णय प्रासाद ---

प्रथम स्तम्भः-समवसरणके वर्णन युक्त-राग द्वेषादि अतरग शत्रु विजेता सर्व जिनेश्वर देवोंकी; युगादिदेव श्री ऋषभदेकी, बाईस तीर्थंकरोंकी, चरम तीर्थपति श्री महावीर स्वामीजीकी, गणधर गौतम-पूर्वाचार्योंकी, सरस्वती देवी-शासन रक्षक देव-देवी-समकिती देव-देवीकी अनेक श्लोकोसे मंगलाचरण रूप स्तुति करते हुए ग्रन्थारम्भ किया है।

प्रारम्भमे माध्यस्थतासे सत्यधर्मके निश्चय और निश्चित सत्य धर्मके स्वीकारकी भव्य जीवोको प्रेरणा देते हुए प्रो. मेक्समूलरके अभिप्रायसे वर्तमानमे मान्य प्राचीनतम वेदमंत्र-जरथोस्ती धर्म आदिसे भी अधिकतम प्राच्य जैनधर्म और धर्म पुस्तकोंको सिद्ध करके जैन

परंपरानुसार, जैनधर्म शाश्वत होने पर भी, और उसके सिद्धान्तोंकी भी शाश्वत प्रवाहिता होने पर भी वर्तमान जैन ग्रन्थ-चरम तीर्थंकर आश्रयी चरणकरणानुयोग और कथानुयोगकी भिन्नताके कारण अर्वाचीन प्ररूपणा है-वर्तमान वेदादिसे परवर्ती होने का स्वीकार किया है।

तत्पश्चात् अद्यावधि ज्ञानका कब-कैसे-क्यों-कहाँ ह्रास हुआ; कुल ज्ञानके प्रमाणसे वर्तमान ज्ञानका प्रमाण; ज्ञान कंठाग्र रखनेका कारण, मुखाग्र ज्ञानका ग्रन्थस्थ होना; अठारह लिपिका स्वरूप, प्राकृत-संस्कृतकी प्राचीनता और विद्वद्‌जगत्‌में मान्यता, संस्कृतकी उत्पत्ति-प्राकृतकी महत्ता, तीन प्रकारकी प्राकृतका स्वरूप, प्राकृतज्ञान विषयक दयानंदजी की अज्ञता, 'अज्ञान तिमिर भास्कर'में वर्णित चारों वेदोंकी हिंसक प्ररूपणा और 'जैन तत्त्वादर्श'में वर्णित वेदोंकी उत्पत्तिकी ओर इंगित करते हुए उन वेदोमें प्रार्थना रूप ऋचाओंका उल्लेख किया गया है। साथ ही ऋग्वेदके सातवें मंड़लमें ईश्वर स्वरूप और स्तुतिकर्ता सूक्त प्रक्षेप रूप सिद्ध किये हैं। विधिवाक्योंको ही वेद माननेवाले अनीश्वरीय मीमांसक मतका प्रतिपादन प्राचीन वेदोमें प्राप्त होनेसे ईश्वर स्वरूप-स्तुति एवं वेदान्तके अद्वितीय ब्रह्मकी प्रतिपादक श्रुतियाँ प्रक्षेप रूप स्वतः सिद्ध होती है। अंतमें "वेदसर्वज्ञ प्रणीत न होनेसे उनकी प्राचीनता या अर्वाचीनता महत्वपूर्ण नहीं है-" ऐसा स्व अभिप्राय पेश करके कुछ वैदिक ऋचाओंके परिचयके साथ प्रथम स्तम्भ समाप्त किया है।

द्वितीय स्तम्भ:-इस स्तम्भमें ब्रह्मा-विष्णु-महेशके जिस स्वरूपको जैन मतावलम्बी मानते हैं - उसे लेखकश्रीने कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यजी म.सा. रचित 'महादेव स्तोत्र'के श्लोकाधारित प्ररूपित किया है। जिनके प्रशान्त, अपायापगम अतिशय आश्रयी निरुपद्रवका हेतु-अभयदाता-मंगल-प्रशस्त रूप होनेसे शिव; शुद्ध ज्ञानादि गुणोंसे बड़े होनेसे-महादेव; स्याद्वादके सहारे सर्व पदार्थों पर समान शासन कर्ता-ईश्वर याने महेश्वर-छाद्मस्थिक अवस्थामें इन्द्रिय दमन-महान दयापालक एवं महाज्ञान (केवलज्ञान) प्राप्त महाज्ञानी और ज्ञानरूपसे सर्व जगत् व्यापी, १८ दूषण रूप महातस्कर विजेता, कामजीत, रागादि दुर्जेय महामल्ल विजेता, निर्भय, २८ भेद युक्त महामोहनीय-कर्म-जालनाशक, महामद-लोभ त्यागी, क्षमादि उत्तम गुणधारी, पंच महाव्रतोपदेशक, महातपस्वरूप, महायोगी, महाधीर, महामौनी, महाकोमल हृदयी-क्षमा प्रदाता, अनंत वीर्यवान्, १८००० शीलांग युक्त अनंत क्षायिक चारित्रवान्, मुद्रा स्वरूपसे ही निरुपद्रवी, अव्यय स्वरूपी, पैंतीस गुणालंकृत वाणीसे सर्व जीवोके उपदेशक होनेसे 'शं'-सुखकारी, अतिशय आत्मानंदी, द्रव्यार्थिक नयसे अनादि-अनंत शक्तिवान, सापेक्ष रूपसे सादि अनत और सादि सात-सदोष और निर्दोष-साकार और निराकर; बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा-त्रयात्मरूप परमपद प्रापक परमात्मा ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर है। द्रव्यार्थिक नयसे एक ही मूर्तिमे स्थित और पर्यायार्थिक नयसे ज्ञानमय विष्णु-दर्शन रूप महेश्वर और चारित्र रूप ब्रह्मा-त्रिरूप एक आत्मद्रव्य स्थिति शक्य हो सकती हैं. लेकिन कार्य-कारण-क्रियारूप, माता-पिता-जन्म समय, स्थान, नक्षत्र-देहवर्ण-शस्त्र, देहके अंगोपांग, स्वारीके लिए वाहनादि अनेक स्वरूपोमे विलक्षण

हेतुरूप-विभिन्न गुणाश्रित व्यक्तित्वधारीकी एक प्रतिमा होना सर्वथा असंभवित है। अतएव अर्हन्‌की त्रयात्मक-त्रिगुणमय स्वरूप--ज्ञानमय विष्णु, दर्शनमय(सम्यक्त्व) शिव और चारित्रमय ब्रह्मा--एक आत्म द्रव्य स्वरूप, कथंचित भेदाभेद रूप है–प्रतिमा संभव भी है और सिद्ध भी। इसी प्रकार क्षिति-क्षमा, जल (निर्मलता), पवन (निःसंगता), अग्नि (कर्मवन दहनसे निर्मल योग प्राप्ति), यजमान (दयादिसे आत्म-यज्ञकर्ता), आकाश (निर्लेपता) चंद्र (सौम्यता), सूर्य (ज्ञानसे प्रकाशवान्) आदि आठ गुण युक्त ईश्वर पुण्य-पाप रहित, राग-द्वेष विवर्जित अर्हन् शिवाभिलाषीको मुक्ति पदेच्छुकको नमस्करणीय हैं।

'अर्हन्' स्थित त्रिमूर्ति वर्णन--'अ' विष्णुवाचक, 'र' ब्रह्मावाचक, 'ह' हर (महादेव) वाचक और अंतिम 'न'कार परम पदवाची है। जबकि जैन मतानुसार 'अ'--आदि धर्म, आदि मोक्ष प्रदेशक, आत्म स्वरूप विषयक परमज्ञान; 'र'--रूपी-अरूपी द्रव्य दृश्यमान करवानेवाला लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान रूपी नेत्रसे परम दर्शन स्वरूपी; 'ह'- (राग-द्वेष-अज्ञान-मोह-परिषहादि और) अष्टकर्मकी हनन क्रिया रूप *परम चारित्र*; 'न'-नवतत्त्व अतः संतोष द्वारा सर्वांग संपूर्ण-अष्ट प्रातिहार्य युक्त-नवतत्त्वज्ञ अर्थात् परम ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय नवतत्त्वके ज्ञाता और प्ररूपक 'अर्हन्' को पक्षपात रहित नमस्कार किया है। और अंतमें संसार रूप बीजके चारगति रूप अंकुर उत्पन्न होनेके हेतुरूप अठारह दूषण क्षय भावको प्राप्त होनेवाले, नामसे ब्रह्मा-विष्णु-हर या जिन, जो भी हो उन्हें नमस्कार किया है-जैसे श्री मानतुंगाचार्य म.ने 'भक्तामर स्तोत्र-२५'में किये हैं।

तदनन्तर लोक व्यवहारमें ब्रह्मा-विष्णु-महेशके चरित्र स्वरूपको भर्तृहरि, भोजराजाके कवि श्रीधनपाल, अकलंक देवादि द्वारा प्ररूपित उपहासजनक स्वरूपको उद्धृत करते हुए अंततः जनसमूह कल्पित त्रिमूर्ति नहीं लेकिन यथार्थ ज्ञान, दर्शन, चारित्र-मय गुणरूप प्रतिमा जैनोंके लिए उपास्य है। इस प्ररूपणाके साथ स्तम्भको पूर्ण किया गया है।

तृतीय स्तम्भः इस अवसर्पिणीके पंचम-दूषम-कालमें अज्ञानांधकारको दूर करने में सूर्य सदृश, अमृतमय देशनासे प्रतिबोधित कुमारपाल द्वारा अभयदान रूप संजीवनी औषधिको प्रवर्तमान करवाकर असंख्य जीवों के जीवित-प्रदाता, निर्मल यशःधारी श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा. द्वारा रचित आचार्य प्रवर श्रीसिद्धसेन दिवाकरजी सदृश श्रीवर्धमान स्वामीकी स्तुति रूप 'अयोग व्यवच्छेद' नामक बत्तीसीकी इस स्तम्भमें प्ररूपणा की गई है।

अध्यात्म वेत्ताओंके लिए भी जिसका पूर्ण स्वरूप-ज्ञान अगम्य है, विशिष्ट ज्ञानीके वचनोसे अवाच्य है, छाद्मस्थिकोंके नेत्रयुगलोके लिए प्रत्यक्ष स्वरूप भी परोक्ष बन जाता है -ऐसे अनतानंत गुणवान्, आत्मरूप ज्ञानादि पर्यायोको प्राप्त-परमात्माकी स्तुति करनेके लिए स्वयं को बाल-अशिक्षित-अपलापक-बालिश दर्शाते हुए भी सबलभूत-साहस प्रदाता-जिनगुण प्रति दृढानुरागी परमयोगी-सार्थ व समीचीन स्तुतिकार यूथाधिप श्री दिवाकरजी सदृश निश्चल गुणानुरागी बाल कलभ तुल्य निजका मिलान करते हुए साहित्यविद् श्री हेमचंद्राचार्यजी म

इन स्तुतिमें होनेवाली स्खलनाको अनपराध्य, अशोचनीय, क्षम्य कथित करते हैं।

इस प्रकार प्रारम्भिक तीन श्लोकमें मंगलाचरण रूप परमात्माके अवर्णनीय गुण, पूर्वाचार्योंके प्रति हार्दिक बहुमान और स्वयंकी निरभिमान-लघुताको प्रदर्शित करते हुए, यथावस्थित पदार्थ स्वरूप, नवतत्त्व, रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग, कर्मफल प्रदाता रूपमें निमित्तादि कारण, आत्माका देहव्यापीपना, जगतका अनादि-अनंतकालीन प्रवाह रूपादि प्ररूपणा करनेवाले सुमार्गगामी-सुमार्गोपदेशसे निरंतर जीवोंको कृतार्थ करनेवाले परमात्माकी कृपावर्षाकी स्तुति और सत्को असत् या असत्को सत्रूप मिथ्या प्ररूपक जैनोंको निंदक या नास्तिक कहनेवाले परतीर्थियोंको कोसा है। श्री जिनेन्द्रके स्याद्वाद रूप सूर्यमंडलके प्रमाणयुक्त, अविरोधी वचन युक्त, सर्व दोष मुक्त-एक मात्र जैन अनेकान्तिक प्ररूपणा ही ग्राह्य और हितकारी हैं, जिसे पराजित करनेके लिए एक एक नय या नयाभासरूप खद्योत सर्वथा असमर्थ और अश्रद्धेय सिद्ध किया है। तदनन्तर अरिहन्त भगवंतोंके उत्कृष्टतम ऐश्वर्य और अनुपमेय यथार्थ देशना होने पर भी उन सत्योपदेशकी उपेक्षाका एक मात्र कारण-पंचमकालके प्रभावसे मिथ्यात्व मोहनीय कर्मके विपाकोदयसे सत्यमार्गका आच्छादित होना और सत्यमार्ग दृष्टिगत न होने देना ही है।

अनादि मुक्त, निरंजन-निराकार सर्व व्यापी एक ही ईश्वर कभी उपदेष्टा नहीं हो सकता, उपदेष्टा हो सकता है, निरुपाधिक ज्ञानज्योति-स्वरूप देहधारी उपदेशक और आप्तवचनोंके अर्थघटनमें मिथ्यात्वोदय या मंदबुद्धिसे उपद्रव कर्ताको नसीहत मिलनेसे जिनशासनकी ज्ञानलक्ष्मी अद्यावधि अधृष्या रह सकी है। राग-द्वेषादि दूषणोंने प्रथमसे ही श्री जिनेश्वरके पाससे भागकर, कर्मक्षय-उपशम-क्षयोपशममें अप्रवृत्त परवादीके अन्य देवोंमें सुरक्षित स्थिति प्राप्त की है। शुक्ल ध्यान लीन वीतरागको मोहनीय कर्मजन्य करुणा न होनेसे उन्हें तीर्थ प्रवर्तनादिके लिए मोक्षगमन पश्चात् बारबार अवतारी नहीं बनना पड़ता। सृष्टिका सर्जन-विसर्जनकर्ता ईश्वर संसारक्षय करवानेवाले सदुपदेश नहीं दे सकते। जहाँ पर्यंकासन-विरामयुक्त-नासाग्र पर मर्यादायुक्त स्थिर दृष्टि रूप योगमुद्रा जिनमुद्रा ही नहीं वहाँ उनमें अन्य गुणोंकी संभावना कैसे हो सकती है?

सम्यक् ज्ञानाधार, परमाप्तोंके परम शुद्ध स्वभावदर्शक, कुवासनापाशभंजक श्री जिनशासनको नमस्कार करते हुए दो अनुपमेय-अप्रतिम बातें-- (१) जिनेश्वर द्वारा पदार्थोंका यथास्थित, यथार्थ स्वरूप वर्णन, (२) परवादियोंके पदार्थ स्वरूप निरूपणकी असमंजसता-इनके लिए आश्चर्य व्यक्त करके जन्मांध (मिथ्यात्वी विशृंखल-स्वच्छंदाचारी-महा अज्ञानी-जिनेश्वरके अमूढ लक्ष्यके खंडन कर्ताओं) के लिए अंजनवैद्य तुल्य निर्मल दृष्टि सम्यकत्वी भी कोई उपचार करनेको असमर्थ है। परवादियोंको अज्ञात और जन्मजात वैरीके भी वैर शमनमें समर्थ जिनेश्वरकी देशना-भूमिके शरण अंगीकरणसे सभीका सर्व जीवोंसे वैर-विरोध खत्म हो जाता है।

निष्कर्ष-आत्माको मलिनकर्ता दूषित शासन, मिथ्या होनेसे त्याज्य और सर्वदेव-सर्वधर्म समान माननेवाले मध्यस्थ भाव धरनेके घमडयुक्त सत्मार्गकी निंदासे आत्महानि और युक्तियुक्त शास्त्र कथनमें अनुरक्त मनीषी आत्महित करते हैं। अतः श्री हेमचन्द्राचार्यजी म. अवघोषणा करते

हैं-"वीतराग के अतिरिक्त अन्य कोई सत्य धर्मका उपदेष्टा नहीं है, और अनेकान्त-स्याद्वाद बिना पदार्थ स्वरूप कथनकर्ता कोई नय-स्थिति भी नहीं है। "स्यात्"के बिना सहयोग, किसी भी-नित्यानित्यादि-नयके कथन सिद्ध नहीं होते हैं।" हरि-हर-ब्रह्माके प्रति द्वेषके कारण नहीं किन्तु संपूर्ण निष्पक्ष-आप्त(आगम)वचन, चारित्र, मूर्ति-रूप तीन प्रकारकी कसौटीसे आपको शुद्ध जानकर ही, हे वर्धमान, आपके प्रति श्रद्धा दृढ़ करके आपका आश्रित बना हूँ। हे भगवन्, तेरी वाणीके चंद्रकिरण-तुल्य ज्ञान-रूप उज्ज्वल और तर्करूपसे पवित्र स्वरूप प्रकाशक रूपको जो अज्ञानियोंसे अज्ञात है--हम पूजते हैं। अंतमें विशेष बोध रहित-कोमल बुद्धि-इस स्तोत्रको श्रद्धासे और जो स्वभावसे स्वमताग्रही, परनिंदक निंदारूप अवगाहे; किन्तु हे जिनवर, यह स्तुतिमय स्तोत्र-समर्थ बुद्धि, राग-द्वेष रहित, सतसत्‌के निर्णायक-परीक्षककी धर्मचिंताको धारण करने योग्य-तत्त्व प्रकाशक है।

ऐसी प्ररूपणाके साथ, इस स्तोत्रके बालावबोधको समाप्त करते हुए ग्रन्थकार श्री आत्मानंदजी म.सा.ने इस स्तम्भको भी समाप्त किया है।

चतुर्थस्तम्भः--इस स्तम्भमें श्री जिनेश्वरोंको प्रणाम करके श्री हरिभद्र सूरीश्वरजी म.सा. कृत 'नृतत्त्व निगम' अर्थात् 'लोकतत्त्वनिर्णय'का बालावबोध ग्रन्थकारने प्रस्तुत किया है, जिसके अंतर्गत भव्याभव्य या योग्यायोग्य श्रोताके लक्षण एवं परिचय विविध दृष्टान्तों द्वारा करवाकर उन्हें प्राप्त उपदेशका परिणाम, एक समान उपदेशका भिन्न भिन्न पात्रानुसार विभिन्न रूपमें परिणमन, युक्ति प्रमाणकी कसौटीका स्वरूप वर्णन प्ररूपित करते हुए बाल बुद्धि-स्वमत हठाग्रहीको आत्महित प्राप्तिका अभाव दर्शाया गया है। सुश्राव्य वचनोंको सुनकर तुलनात्मक बुद्धिसे ग्राह्यका ग्रहण करके और कुज्ञान, कुश्रुति, कुदृष्टिका वर्जन सूचित किया गया है। प्रत्यक्ष देवके अभावमें इनके चारित्रादि, आप्त-आगमादि शास्त्र-प्रतिमादि दर्शन द्वारा, निश्चित करनेमें निंदा नहीं है।

एक दोष पीड़ित, भय पीडित, निर्दयी, अज्ञानी, विविध शस्त्रधारी, हिंसक, लज्जा-त्यागी, रागी, आदि अनेक दूषण युक्त है; और एक इन सबसे मुक्त, सर्व क्लेश रहित, पर हितमें सावधान, सर्व जीवोंके शरण्यभूत, आदि अनेक गुण युक्त होनेपर तुलनात्मक दृष्टिसे बुद्धिमान---किसे आराध्य मानेंगे? सन्मार्गसे स्खलित पुरुष, समर्थ भी हो, दुःखी होता है। भगवान महावीर और अन्य बुद्धादि देव-दोनोंमें किसीके प्रति राग-द्वेष, पक्षपात, वैर-विरोध नही; न किसीने किसीका लिया-दिया है; लेकिन एकांत रूपसे जगहितकारी, उपकारी, निर्मल, अनेकानेक गुणयुक्त---सर्व दोषमुक्त भ.महावीर होनेसे वे आराध्य, शरण्यभूत, सकल ज्ञेय पदार्थ प्रकाशक, श्रद्धा संयुक्त श्राव्य वाणीके स्वामी-सभीके आराध्य हो सकते हैं। श्री अर्हन्‌के यथार्थ स्वरूपके अज्ञात, स्वत: प्रवृत्तिरूप, परकी अनुवृत्तिरूप, दाक्षिण्यतासे, फल प्राप्ति के संशय युक्त अथवा बिना भक्तिभावसे भी आपको किया हुआ नमस्कार सुखादि संपत्ति-विभूति दायक होता है, तब आपके यथार्थ शासनके श्रद्धा-भक्तिसे आराधकोंको कैसा उत्तम फल (मोक्ष फल?) मिलेगा?

निष्कर्ष-अति सुंदर प्रौढ़ आगमवचन प्रवक्ता, जगत्के एकांत हितकारी सूक्ष्म बुद्धि चक्षुसे अन्वेषण करके, बिना पक्षपात-शास्त्रोक्त युक्ति युक्त वचन ग्रहणका अपना निश्चय प्रगट करते हुए निःस्वार्थी, परमोपकारी, समस्त विश्वके पदार्थोंको त्रिपदी रूपमें अनन्य सदृश ज्ञाता और अनन्य सदृश अचिन्त्य-अकलंक चारित्रवान् विशेषण विशिष्ट; सर्व दोषोंका क्षय तथा अनंत ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्यादि अनंतगुण प्रगट किये हों-ऐसे देव नामसे ब्रह्मा, सुखदायी शंकर, विष्णु हों या रत्नत्रयी प्रदाता जिन हों-उन्हें अंतःकरणसे हार्दिक नमस्कार करने योग्य हैं।

इस प्रकार इस स्तोत्रसे 'देवत्व'का निर्णय करते हुए इस स्तम्भको संपूर्ण करके, परवर्ती-पंचम स्तम्भमें स्याद्वादाधारित देवोंके 'क्रियात्मक'निर्णयका विवेचन किया जा रहा हैं।

पंचम स्तम्भः-इस स्तम्भमें सृष्टि सर्जन विषयक विवेचन किया गया है। स्याद्वादसे निश्चित किये गये तत्त्वज्ञानसे अज्ञात सर्ववादियों द्वारा लोक क्रियात्मक विषयक याने-ईश्वर, सृष्टि रचना, आत्मा, कर्म, द्रव्य-गुण-पर्याय-आदि विषयक अनेक विभिन्न मान्यतायें स्थापित की गई हैं। जिनमें वैशेषिक, नैयायिक, सांख्य, मीमांसक, बौद्ध, आदि आस्तिक एवं चार्वाकादि नास्तिक दर्शनोंके अंतर्गत कालवादी, ईश्वरवादी, ब्रह्मवादी, सांख्यवादी, क्षणिकवादी, पुरुषवादी, आत्मवादी, दैववादी, अक्षरवादी, स्वभाववादी, अंडवादी, अहेतुवादी, परिणामवादी, नियतिवादी, भूतवादी, आदि अनेक वादियोंके स्वमतानुसार शास्त्रोंके उद्धरण देते हुए उन्हें पूर्वपक्ष रूप स्थापित किये गये हैं।

इस अवसर्पिणीकालमें अनंत नयात्मक, सर्व व्यापक, स्याद्वाद-स्वर्णरस कूपिकाके रस समान-सर्व जीवादि तत्त्वोंकी प्ररूपणा श्री ऋषभदेवजीने की, जिसे भरतचक्री द्वारा आर्यवेद रचनामें समाहित किया गया। उसका ही यत्किंचित् स्वरूप सांख्य; और उन्हींमेंसे अनार्य वेद-वेदांतादि शास्त्र रचे गये, और मत स्थापित हुए।

अब यहाँ श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी द्वारा समुच्चयसे सर्व पक्षोंका किया गया खंडन इस प्रकार प्रस्तुत किया है-यथा (१) सत् और नित्य कारणसे जगत् उत्पत्ति नहीं हो सकती। (२) असत् कारण और कर्ता, कोई कार्य-सृष्टि सर्जनादि-करनेमें, (बिना अस्तित्वके कारण) असमर्थ रहेंगे। अतः प्रवाहापेक्षया यह सृष्टि अनादि स्वभाव सिद्ध है। मूर्त एवं अमूर्त द्रव्य न विनाशी हैं, न कभी अन्यत्वभाव प्राप्त। जगत् उत्पत्ति-विनाश, पर्यायरूप और ध्रुवता (शाश्वतता)-द्रव्यरूपसे ही है। अतः जैसे ईश्वरको किसीने भी नहीं रचा, वैसे ही जगत-प्रपंच भी किसीका रचा नही, लेकिन अनादिकालीन मानना चाहिए। ईश्वर कृतकृत्य हैं, वीतराग-आप्त न्यायशील-निष्पक्ष-दयालु-सर्व सामर्थ्यवान हैं, इसलिए जगत्कर्ता नही हो सकते। अगर सृष्टि रचे तो ये गुण असिद्ध हो जायेंगे, ऐसे अगुणी ईश्वरको कोई कल्याणकारी न मानेगे। अतः सृष्टिकर्ता कोई नही हैं। यहाँ मुक्त जीवोंका स्वरूप वर्णित हैं। इसके साथ ही कर्मजनित प्रभुत्व, मेरु आदि पदार्थोंका नित्यत्व और अकृतकत्व, आदिके वर्णनके साथ, लोक व्यवहारमे प्रवर्तमान कालचक्रकी तरह ज्योतिष्चक्र और जीवचक्र भी नित्य-अनादि-शुभ-अशुभ कर्मोंके अनुभाव

सामर्थ्यसे प्रवर्तमान हैं। जगतके पदार्थ स्वरूप या प्रवाहरूपसे अनादि है, अतः लोक शाश्वत है और लोकसे बाहर अलोक-केवल आकाश मात्र ही है। लोकमें संसारी जीवोंका परिभ्रमण आकृति-जाति-योनि- स्वकर्म अनुसार होता हैं। इन विविध रूपोसे गहन एवं विशद-इस लोकका न पर्यवसान है न प्रारम्भ।

निष्कर्ष-अतएव अनादि-अनंत-कष्टदायी-भयजनक-यह दृढ संसारचक्र, जन्म आदि रूप आरें दोषरूप नेमिधारा, रागरूप तुंबघोरनाभिवाला, स्वकर्मरूप पवनसे प्रेरित निरंतर भ्रमण करता हैं। अतः ईश्वरको सृष्टिकर्ता मानना, केवल अज्ञानियोंकी अर्थहीन लीला मात्र है। अंतमें ग्रन्थकार द्वारा महादेव स्तोत्र, अयोग व्यवच्छेद और लोकतत्त्व निर्णय-ग्रन्थोंके अर्थरूप बालावबोधमें कृतिकार श्री हेमचंद्रचार्यजी और श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.के अभिप्रायसे अथवा जिनाज्ञा विरुद्ध हुई प्ररूपणाके लिए 'मिथ्या दुष्कृत्'-क्षमायाचना करते हुए उन गलतियोंको सुधारनेके लिए सुज्ञजनोंको अपील करते हुए इस स्तम्भकी परिसमाप्ति की गई है।

षष्ठम स्तम्भः-इस स्तम्भमें सृष्टि-रचना-क्रमको, विस्तृत रूपमें वेदाधारित एवं सांख्य मताधारित मनुस्मृति आदिमें विवरित संदर्भोंको उद्धृत करते हुए प्ररूपित किया है। कहीं ब्रह्माकी स्वर्ण अंडेमें स्वतः उत्पत्ति और उन्हींके द्वारा सृष्टि रचना वर्णित हैं, तो कहीं पांचभूत-बुद्धीन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-प्राण-मन-कर्म-अविद्या-वासनादि सूक्ष्म शक्ति भेदाभेद रूपमें ब्रह्माके साथ थी-ऐसे ब्रह्माने ध्यानसे पाणी रचा। अतः सूक्ष्म प्रकृति रूपसे ब्रह्माके भेदाभेदतासे अद्वैत निर्मूल हो जाता हैं। और भेदाभेदकी समसमयमें प्ररूपणा बिना स्याद्वादके सहयोगसे अकथनीय है। अतएव कथंचित् भेदाभेद रूप माननेसे द्वैतरूप सिद्ध और अद्वैतरूप असिद्ध हो जाता है।

अन्यथा जड़का उपादान कारण जड़ और चैतन्यका चैतन्य होता है, अतः चैतन्य ब्रह्मसे जड़-चैतन्य-मिश्ररूप सृष्टि होना असिद्ध होता है। इससे "एक ब्रह्मरूप चैतन्यकी अनेक रूप होनेकी ईच्छा"भी प्रमाणबाधित होती है। ऋग्वेद-यजुर्वेद-गोपथ ब्राह्मणमें ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलसे और मनुजी द्वारा अंडेसे मानना भी विरोधाभास है। अंडेमें ३११० अरब वर्ष पर्यंत ब्रह्माका रहना भी ईश्वरके निराबाध-सर्वशक्तिमान गुणको बाधित करता है। कहीं जड़से चैतन्य और कहीं चैतन्यसे जड़की उत्पत्तिकी प्ररूपणा भी प्रमाणबाधित है। इस प्रकार मनुस्मृत्यादि प्ररूपित सृष्टि रचना क्रम एवं प्रक्रियाको असिद्ध प्रमाणित करते हुए इस स्तम्भको पूर्ण किया है।

सप्तम स्तम्भः-इस स्तम्भमें ऋग्वेद-यजुर्वेदादिके आधार पर सृष्टि रचना-क्रम-प्रक्रियाका विवेचन किया गया है। अतीत कल्पमे जीवो द्वारा किये गए कर्मके विपाकोदयकालमे भावरूप माया (अज्ञान) और कारणभूत मायाके साथ अभिन्नत्वसे रहे ब्रह्मा-ईश्वरके मनमे सृष्टि रचनेकी ईच्छा हुई जिससे त्रिकालज्ञ योगीश्वरने बुद्धिसे विचार करके उन कर्मानुसार क्षणमात्रमे सृष्टि रचना-युगपत् विश्वमे व्याप्त सूर्यकिरण सदृश-की जिसके अंतर्गत मानस यज्ञ-प्राकृतिक या नैसर्गिक यज्ञकी कल्पना करके हविष्-इध्म-पुरोडाश आदि उसके भोग्याभोग्य सामग्री सर्वऋषियोके यजनके लिए रची। उसी यज्ञसे वेद-गायत्री-सर्व-पशु आदि उत्पन्न हुए और

प्रजापतिके विभिन्न अंगोपांगसे विभिन्न जातिके मनुष्य-देव-आकाश-दिशा-पदार्थादि उत्पन्न हुए।

यजुर्वेदके १७ वें अध्यायानुसार पुनः सृष्टि रचनाकी अभिलाषासे "मैं बहुत हो जाउँ"- ऐसा सोचते हुए सृष्टि रचना की। कुंभकार सदृश द्यावा-पृथ्वी-सर्जक विश्वकर्मा एक-अकेला-असहायी, धर्माधर्म निमित्तसे अनित्य पंचभूत रूप उपादानसे सृष्टि रचते हैं। इनके आंख-मुख-बाहु-पैर आदि सर्वतः है, अर्थात् सर्व दृश्यमान प्राणियोंके चक्षु आदि उन्हीं उपाधिरूप परमेश्वरके ही हैं। अन्य सृष्टि रचनाके लिए भी अन्य कोई उपादान-निमित्त कारण नहीं हैं, लेकिन उर्णनाभि सदृश सृष्टि रचना करते हैं। -इस तरह विश्व रचनाकी प्ररूपणाके साथ यह स्तम्भ पूर्ण किया गया है।

अष्टम् स्तम्भः-सप्तम स्तम्भमें वर्णित सृष्टि क्रमादिकी समीक्षा इस स्तम्भमें की गई है। इसकी समीक्षा करनेके पूर्व ही ग्रन्थकारने स्पष्टतया अपने उदार और माध्यस्थ विचारोंको प्रस्तुत किया है। "किसी भी शास्त्रका प्रथम श्रवण-पठन-मनन-निदिध्यासनादि करके युक्ति प्रमाणसे बाधित प्ररूपणाका त्याग और युक्तियुक्तका स्वीकार करना चाहिए। मतोंका खंडन-मंडन देखकर कभी किन्हीं मतावलम्बियोंकी और द्वेषबुद्धि नहीं करनी चाहिए। क्योंकि सभी स्वयंका माना हुआ मत ही सच्चा मानते हैं।" तत्पश्चात् सर्वमतोंकी जगत्कर्ता विषयक मान्यतामें विलक्षणता दर्शाते हुए ऋग्वेदानुसार जगत्कर्ताका विवेचन करते हैं। तदन्तर्गत मायाकी सत्-असत् अनिर्वाच्यता और ब्रहमका अद्वैत-द्वैत-निर्मलता-वितरागताका विश्लेषण करते हुए, वेदमें सूचित मकडीके जाले के दृष्टान्तको असिद्ध करके ब्रह्मकी सावयवता, नित्यता, द्वैतता, अज्ञान, अविवेक, निर्दयता, अवीतरागता, जडता, आत्मघातकता और मायाका अनादिपना सिद्ध करके किसीभी दर्शनमें कर्मके सर्वांग-संपूर्ण स्वरूप विवरणके अभावको प्रकाशित किया हैं।

उपनिषदानुसार सृष्टि रचनासे लाभालाभ, प्रलापरूप प्रलय स्वरूप वर्णन, बिना शरीर सृष्टि रचनाकी असंभवित ईच्छा, सशरीरी ब्रह्मकी अद्वैतताकी, असिद्धि, ब्रह्मका नित्यानित्यत्व, रूपारूपित्व, "परमात्माके सामर्थ्यसे सृष्टि रचना"-कथनमें इतरेतराश्रय दूषण, ऋग्वेद अ.८ अ.४की श्रुतिमें वर्णित सृष्टि क्रमकी अनेक युक्तियुक्त प्रमाणसे समीक्षा, बिना परमाणु भूमि सृजन-शरीरादि रचनाकी मिथ्या प्ररूपणा और गर्भजकी उत्पत्ति गर्भसे और निश्चित जीवोंके जन्म निश्चित योनिसे ही होनेकी वैज्ञानिक एवं तार्किक प्रमाणसे सिद्धि, दृश्यमान सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र-तारादि ज्योतिष्क नामक देवोंके निवास स्थान रूप विमान (जो प्रवाहसे अनादि अनंत कालीन है।) की प्ररूपणा, अनेक देवो, दिशा-आकाशादिकी उत्पत्तिकी मिथ्या कल्पनादि अनेक प्ररूपणाओके आलेखनको समीक्षित करते हुए सत्यकी सिद्धि-मिथ्याकी असिद्धि करते हुए इस स्तम्भ को पूर्ण किया हैं।

नवम स्तम्भः-इस स्तम्भमे तपके प्रभावसे अथवा स्वदेहसे-पगसे पृथ्वी, पेटसे आकाश और मस्तकसे स्वर्गरूप-सृष्टि सर्जन और पालन, ब्रह्माकी उत्पत्ति, दिशा और आकाशकी उत्पत्ति मानस यज्ञसे देवो द्वारा वेदकी उत्पत्ति, विभिन्न विरोधाभासी स्थानसे इंद्र-चंद्र-सूर्य-अग्नि आदि

देवोंकी उत्पत्ति, परमात्माका शरीर, ईश्वरकी सर्व पदार्थोंमें स्वाधीनता, प्रजापतिकी एकसे बहुत होनेकी ईच्छा, ब्रह्माकी एकही अक्षरसे सर्व कामनाओंका अनुभव करनेका विचार (ॐका दर्शन), सृष्टि रचना पूर्व उपादान कारणोकी स्थिति, स्वयंभू परमात्माको ऋतुकाल आनेसे गर्भाधान, यज्ञके उच्छिष्ट अन्नभक्षणसे स्त्रीको गर्भाधान, ऋषियोकी सर्वज्ञता, और उनका वेदज्ञान, ब्रह्मांका पर्यालोचन रूप तप-वायु रूप भ्रमण-वराहरूप धारण, अन्य पृथ्वी से मिट्टी लाना, (जिससे अन्य लोक स्वतःसिद्ध), विटम्बना युक्त मैथुन सेवनसे सृष्टि रचनाकी कल्पना आदि अनेक कुयुक्तियोंका, ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-अथर्ववेद; उन वेंदोकी वाजसनेयी आदि संहितायें, तैत्तरेय ब्रा.-एतरेय ब्रा.-गोपथ ब्रा.-शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषद, बृहदारण्यक आदि आरण्यक, सायणाचार्य-महीधर-कुशलोदासी आदिके भाष्य, दयानंदजी आदि अनेक नूतन समीक्षकोंकी प्ररूपणा (एक ही ईश्वरके व्यतिरिक्त कोई सर्वज्ञ नहीं है- आदि) अनेक प्ररूपणाओंमें परस्पर अत्यन्त उपहासजनक विरोध दृष्टि गोचर होते हैं जिसे अ ेको श्रुति-मंत्र-श्लोकादिके उद्धरण देकर स्पष्ट किया हैं। इसके अतिरिक्त परमात्माका ऋतुकाल और गर्भाधान, सृष्टि जितने बड़े कमलपत्र पर मिट्टी बिछाकर सूखाना और उस पर सृष्टि रचना, प्रजापतिकी, पुत्री-शतरूपासें, विषय सेवनकी ईच्छा और उसकी तृप्तिके लिए अनेक रूप धारण करना तथा इसीसें सृष्टि सर्जन होना; प्रजापतिका पर्यालोचन रूप तप करना, जड रूपके तीनों लोकके पदार्थोंको चैतन्यमय ब्रह्म द्वारा उत्पन्न करवाना-उस जड सृष्टिसे तप व ाना, वेदोच्चारके लिए असमर्थ, उनसे यज्ञ करवाना-आदि अनेक उक्तियाँ उपहासजनक हैं।

निष्कर्ष-जो सर्वज्ञ, निर्विकारी, वीतराग, ज्योति स्वरूप, सच्चिदानंद स्वरूप, ईश्वर परमात्मा होते हैं, वे पूर्वोक्त हास्यास्पद कृत्य नहीं करते हैं, और न उनके वचन वेदवचन सदृश परस्पर व्याघाती या प्रमाणसे बाधित होते हैं, अतएव वेदादि शास्त्र, सर्वज्ञ प्रणीत नहीं-केवल अज्ञानियोंके प्रलाप मात्र सिद्ध होते हैं।

दसम स्तम्भः-इस स्तम्भमें वेदकी ऋचाओंसे ही वेद ईश्वरोक्त या अपौरुषेय नहीं है यह सिद्ध करते हुए कुछ ऋचाओंके उद्धरण दिये हैं, जिन्हें अनेक ऋषियोंने अपने तपोबलसे प्राप्त करके सर्व प्रथम गायी और जिनका विभिन्न सूक्तोमें संकलन किया गया। ऐसे दश मंडलोके दृष्टा दस विभिन्न ऋषि थे।

ऋग्वेदके तृतीय अध्यायमें विश्वामित्र द्वारा नदी, इंद्रादिकी ब्रह्म रूप मानकर स्वशिष्य रक्षाके लिए, शत्रुको शाप-शत्रुनाश और धन-संपत्ति-पशु-पुत्र-परिवारादिकी वृद्धि हेतु प्रार्थना की गई है, अध्याय चतुर्थमे विषयी-कामांध-कृश-दुःखी सप्तवध्रि ऋषि द्वारा कामेच्छा पूर्तिके लिए लज्जाजनक स्तुति-अश्विनीकुमारकी-की गई है; षष्ठम अध्यायमे लोक व्यवहार उल्लंघित-अत्यन्त बिभत्स-हास्यास्पद-विषय-वासनामय अपाला ब्रह्मवादिनीकी इंद्रको प्रसन्न करनेके लिए याचनामय-स्तुति, सप्तम अध्यायमे यम-यमीके सवादमे "प्रजापति ब्रह्माका अपरिमित सामर्थ्यके कारण अगम्यगमन मान्य" -आदि वासनामय मनोवृत्ति युक्त स्तुति, *यजुर्वेद*के तेरहवे अध्यायमे

विश्वके सर्व जातिके सर्पोंको नमस्कार; उन्नीसवें अध्यायमें सौत्रामणी यज्ञ वर्णनमें इन्द्र-नमुचि, अश्विनीकुमार-सरस्वती-सोमरस आदिकी अत्यन्त घृणास्पद प्ररूपणायें, देव-देवी-पितृओंकी शुद्धि-रक्षा-भौतिक समृद्धि प्राप्ति-दुर्जनादि दुश्मनादिके नाशके लिए प्रार्थना, इन्द्र के शरीरके अंगोपांगके लिए विविध हास्यास्पद सामग्रीका वर्णन-बत्तीसवे अध्यायमे अनेक जड़ पदार्थोंकी बुद्धिके लिए बुद्धिहीन याचनायें; चालीसवें अध्यायमें वेद रचयिता ईश्वर ही कहते हैं-"पूर्वोक्तविध धीर पंडितोसे संभूत-असंभूत उपासनाका फल जैसा सुना है वैसा कहते है।" अर्थात् वेद रचना स्वयं ईश्वरकी नहीं, लेकीन पूर्वोक्त-धीर पंडितोंकी प्ररूपणानुसार शिष्य रूप बनकर ही वेद रचे होगें। *तैत्तरीय* ब्राह्मण में "ब्रह्माने सोम राजाको उत्पन्न करके तीन वेद उत्पन्न किये जिन्हें सोम राजा अपनी मुटठीमें छिपाता है।"-इतने बडे वेद मुट्ठीमें कैसे छिपाये" यही आश्चर्यजनक है। *निष्कर्ष*-ऐसे प्रमाणोंसे वेद ईश्वर प्रणीत नहीं लेकिन अज्ञानी, मूर्ख, लालची, व्यसनी, दुराचारीके मानस साम्राज्यकी कल्पना रूप निष्पत्ति हैं। ऐसे अधिक प्रमाणोंके लिए सायणाचार्यादिके ग्रन्थावलोकनकी प्रेरणा देते हुए और अंतमें श्री दयानंदजी और उनके मतावलम्बियोंकी अनघड़ गप्पोंको दर्शाकर इस स्तम्भकी पूर्णाहुति की गई हैं।

एकादश स्तम्भ—इस स्तम्भमें जैनाचार्योंके बुद्धि वैभव रूप गायत्री मंत्रके अर्थकी प्ररूपणा की गई है। सर्व प्रथम ऋ.सं.अ-३, अ.४, वर्ग-१०, यजुर्वेद, शंकर भाष्य, तैत्तरेय आरण्यक--अन्-२७ आदि के आधार पर गायत्री मंत्रका मूल रूप प्रस्तुत किया है-गायत्री मंत्र-"ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्"

जैन मतानुसार व्याख्यार्थ-ॐ-पंचपरमेष्ठि; भूर्भुवःस्वः=मर्त्य-स्वर्ग-पाताल-त्रिलोकको; तत्=व्यापकर (अरिहंत- सिद्धमें स्पष्ट और आचार्यादिमें उसके प्रति श्रद्धा रूप व्याप माननेसे-केवलज्ञानादि गुण द्वारा व्यापकर); सवितुःवरेण्य=सूर्यसे भी श्रेष्ठ (सूर्यका द्रव्यउद्योत देश व्यापक-पंच परमेष्ठिका भाव उद्योत त्रिलोक व्यापी);भर्गोदे= महेश्वर-ब्रहमा-विष्णु; वसि अधीमहि-स्त्रियोंके वशीभूत; धियोयो नः प्रचोदयात्=हे प्रेक्षावान् पुरुष प्रकृष्टाचार (मार्गानुसारी प्रवृत्तिके उदयसे) आचरण कर। भावार्थ यह होगा, "हे बुद्धिवान्, प्रेक्षावान् प्रकृष्टाचार पुरुष! देशव्यापक उद्योतकारी सूर्यसे और स्त्रियोंके वशीभूत ईश्वर-ब्रह्मा, विष्णु, महेश-से श्रेष्ठ पंच परमेष्ठि-जो ज्ञानमय रूपसे पृथ्वी-पाताल-स्वर्ग-त्रिलोकमें व्याप्त हैं-उनकी ही आज्ञा रूप अमृत आस्वाद्य है-वे ही आराध्य, उपास्य, शरण्य, हैं। अतः उनकी ही आज्ञाकी आराधना कर।

इसी तरह नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, वैष्णव, सौगत, जैमिनीय, आदि मतानुसार विविध रूपोमे इस गायत्री मत्रका अर्थ पेश करते हुए अतमे सर्वदर्शन सम्मत सर्वसाधारण व्याख्याकी प्ररूपणा की गई है। *भावार्थ*-ॐकार स्थित पंच परमेष्ठिको प्रणाम पूर्वक, अथवा बीजमत्र ॐकारके उच्चारणपूर्वक, हे सर्वत्र व्यापक ईश्वर-परमेश्वर! सूर्यसे भी श्रेष्ठ, देवत्रयके आराध्य! हमारी मनोगत (उपलक्षणसे वचन एव कायगत) कामनाओका नाश कर और चौर्यासी लक्ष योनि (संसार भ्रमण) से पार होनेके लिए हे सर्वज्ञ, हमे प्रेरणा कर, अर्थात् इनके

ध्वंसपूर्वक हमें मुक्ति प्राप्त करनेमें प्रेरणा करे।

गायत्री मंत्रसे निष्पन्न बीज मंत्राक्षरः--ॐकार=प्रभाविक; भर्गोदे=शब्द स्थित श्वेत वर्णसे शान्ति-पुष्टि, पीतसे स्तम्भन, रक्तसे वशीकरण और कृष्ण वर्णसे विद्वेष-उच्चाटन-मारणादि प्रयोग; भूर्भुवस्तत्=पृथ्वी आदि पंचतत्त्वरूप अर्हन् आदि पाप प्रनाशक पंचतत्त्व स्मरणसे मनवांछित प्राप्ति; रेण्यं धीमहि=ह्रीँ की उत्पत्ति; वरेण्यं= 'ऐँ'की उत्पत्ति, अधीमहि= 'श्री'-आदि सयोगिक महामंत्रोंके निबंधन दर्शाये गये हैं। अक्षर मात्र मंत्र रूप होते हैं-यथा-

"अमंत्रमक्षरं नास्ति, मूलमनौषधम् । अ धना पृथिवी नास्ति, संयोगाः खलु दुर्भगाः ॥"

इससे औषधि रूप विधि भी प्राप्त होती है जिसका भावार्थ है-"मेष शृंगी वृक्षके पत्रदल भाग-१+गेहूंके सत्तु भाग-१+राई भाग-रका मिश्रण घृतके साथ भक्षण करनेसे बल-वीर्य प्राप्त होता है और वायु दूर होता है।

निष्कर्ष-गायत्री मंत्रके इन अर्थोंको ग्रन्थकारने उपा.श्री शुभ तिलक विजयजी म. द्वारा 'गायत्री व्याख्यान'में जो क्रीडामात्र लिखे गये थे उनके आधार पर लिखे हैं जिससे जैनाचार्योंकी सूक्ष्म बुद्धिका परिचय प्राप्त होता है।

द्वादश स्तम्भः-इस स्तम्भमें सायणाचार्यादिके अभिप्रायसे गायत्रीमंत्रके अर्थकी समीक्षा की गई है। सायणाचार्यजी द्वारा ऋग्वेद भाष्यमें गायत्रीमंत्रका तीन प्रकारसे और तैत्तरीय आरण्यकमे उनसे भिन्न प्रकारसे ही गायत्रीका अर्थ किया गया है; तो यजुर्वेद भाष्यमें महीधरजीने गायत्रीका एकदम अलग ढंगका अर्थ प्रकाश किया गया है। शंकर भाष्यमें गायत्रीकी उपासना विधि दर्शाते हुए "सात प्रणवादि व्याहृतियाँ और शिरः संयुक्त सर्व वेदोंके सार रूप गायत्रीको उपास्य माना है। इन सभीसे दयानंदजीने यजुर्वेद भाष्यमें जो अर्थ किया है वह अधिक विचित्र है-यथा-"मनुष्योंको अत्यन्त उचित है कि जगत् उत्पादक, सर्वोत्तम सर्व पापनाशक, अत्यन्त शुद्ध परमेश्वरकी प्रार्थना करे, जिससे प्रार्थित किया वह हमारे दुर्गुणों-दुष्कर्मोंसे मुक्त करें-अच्छे गुण, कर्म और स्वभावमें प्रवृत्त करें।" और उन्होंने ही 'सत्यार्थ प्रकाश'-समुल्लास-१-३ मे इससे एकदम भिन्न अर्थ किये हैं। इसी तरह व्यास सूत्रों पर आठ आचार्योंके विभिन्न अर्थोंसे विभिन्न प्रकारके केवलाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, आदि मतोंका प्रचलन हुआ। कुमारिल और दयानंदजी आदिके कल्पित अर्थोंको स्पष्ट करते हुए और नास्तिककी व्याख्या करके "एकमात्र वेदकी निंदा करनेसे ही कोई नास्तिक नहीं बन जाता"- इस कथनकी पुष्टि की है। उपरोक्त सभीकी व्याख्याओंकी समीक्षा करते करते "हिंसक वेदोंकी रचना अर्वाचीन-प्रक्षेपरूप-मनघडंत-परवर्ती है, क्योंकि प्राचीन वेदोमे हिंसक यज्ञोकी प्ररूपणा नही है"--इसे प्रतिपादित करते हैं। "पशुवध करके यज्ञ करनेके"-एक ही कथनमात्रसे वसुराजाकी अधोगतिको उद्धृत करते हुए यज्ञशेष रूप-मांस-भोजी याज्ञिकोके हालातका चिन्तवन करते हुए पृ ३०६ पर लिखा है-"सम्प्रतिकालमें अनेक जनोंने वेदोंका सत्यानाश किया है। वेदोंके सत्य अर्थ कोई प्रगट नहीं करता है। हमने जो वेद समीक्षा लिखी है वह अपने मनके अनुराग या वेदोंके द्वेष से नहीं लिखी, किन्तु, यथार्थ

सर्वज्ञके रचे हुए यह वेद पुस्तक है कि नहीं-इस बातके सच्चे निर्णय करनेके लिए हमने इतना परिश्रम उठाया है।" इस कथनसे आचार्य प्रवरश्रीकी सत्यप्रियता और सत्यके प्रति उत्कंठा का उद्घाटन स्वयं हो जाता है। "षडंग-वेद आदि सर्व आज्ञा-सिद्ध शास्त्रोंका युक्ति-प्रमाणसे खंडनके निषेध" को "निर्मल सोनेको कसौटीका क्या डर?-" कहते हुए ललकारा है। तत्पश्चात् मूलागममें गृहस्थके संस्कार वर्णनके अभावसे जैनशास्त्रोंकी अमान्यताको मुंहतोड़ जवाब देते हुए स्पष्ट किया है कि, मूलागममे केवल मोक्षमार्गका ही कथन होता है। फिरभी तीर्थंकरादिके चरितानुवाद रूप गर्भाधानसे प्राणत्याग पर्यंतके कुछ संस्कारोंका व्यवहार कथन भी मिलता है। वैसे तो सर्व संस्कारोंका एक ही वेदमें भी वर्णन कहीं नहीं मिलता है। इन सर्व-सोलह संस्कारोंकी प्ररूपणा परवर्ती स्तम्भोंमें करनेकी भावनाके साथ यह स्तम्भ समाप्त किया गया है।

त्रयोदश स्तम्भः--आगम सूचित, परंपरित जैन मतानुसार सोलह संस्करोंका वर्णन-श्री वर्धमान सुरीश्वरजीम. कृत 'आचार दिनकर' ग्रन्थाधारित-जोइस ग्रन्थमें कुल उन्नीस स्तम्भोंमें समाविष्टि हैं- किया गया है।

प्रारम्भिक-श्री अरिहंत परमात्माकी देह भी गर्भाधानादि संस्कारोंसे वासित थीं। अतएव लोकोत्तर पुरुषों द्वारा आचीर्ण होनेसें गर्भाधानादि आचार, सम्यक्त्व, देशविरति-सर्वविरति और अंतमें निवार्ण होने पर अंत्येष्टि-आदि आचार प्रमाणभूत हैं। सर्व आचारोंमेंमूल समान ज्ञान; शाखा और स्कंध सदृश दर्शन और फल रूप चारित्र हैं, जिसका रस मोक्षप्राप्ति है। ऐसे सिद्धान्त महोदधिके कल्लोल रूप चारित्रका व्याख्यान दुष्कर होने पर भी श्रुत केवली प्रणीत शास्त्रार्थ अवलम्बनसे किंचित् आचरणीय आचारोंका वक्तव्य प्रस्तुत किया है। तदनुसार आचार दो प्रकारसे-साध्वाचार और गृहस्थाचार; जिसमें साधुधर्म -जितना विषम या दुष्कर उतना ही मोक्षके समीप और गृहस्थ धर्म सरल-सुखशील-उपचीयमान आत्माको परंपरित मोक्षप्राप्तिका हेतु है। यहाँ इन दोनों आचारोंकी तुलना करते हुए साधु धर्मकी महानता और श्रेष्ठता दर्शायी है।

व्यवहारकी प्रमाणिकता आगम और लौकिक प्रमाणसे सिद्ध करते हुए प्रथम सामान्य व्यवहार और बादमें धर्म व्यवहारके पोषक गृहस्थ धर्म, जिसका पालन तीर्थंकरोंने भी किया है-उसका वर्णन किया है।

सोलह संस्कार नाम--गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, चंद्र-सूर्यदर्शन, क्षीराशन, षष्ठी, शुचिकर्म, नामकरण, अन्न-प्राशन, कर्णवेध, मुंडन, उपनयन, पाठारम्भ, विवाह, व्रतारोप, और अंतिम (आराधना) कर्म। इनमेसे व्रतारोपण साधुके पास और शेष संस्कार अर्हन् मंत्रोपनीत-परमार्हत् (परमश्रावक) ब्राह्मण अथवा गुर्वाज्ञा प्राप्त किसी क्षुल्लक श्रावकके पास करवाना चाहिए (यहाँ संस्कार विधिकारक श्रावककी योग्यता और आचरणका वर्णन किया है')

गर्भाधान संस्कार--गर्भवतीके पतिकी आज्ञा लेकर यथायोग्य समय पति द्वारा स्नात्र-अष्ट प्रकारकी द्रव्यपूजा और भावपूजा करवाके स्नात्रजलसे सधवा माताओं द्वारा गर्भवतीका अभिषेक, शातीदेवीके मंत्रगर्भित स्तोत्रसे सातवार मंत्रित जलसे स्नान, मंत्रपूर्वक वस्त्राचलका ग्रन्थि

बंधन, पद्मासनस्थ गुरु द्वारा स्नात्रजल संयुक्त तीर्थ जलसे गर्भवतीको सातबार अभिसिंचन-जिनदर्शन-गुरुवंदन-दान-दंपतिको मंत्रोच्चारपूर्वक आशीर्वाद और ग्रन्थि वियोजनका विधि क्रमसे निरूपित किया है। (यहाँ जैन वेदमंत्रोंका आविर्भाव और अद्यावधि तवारिख पेश की हैं।) सर्व संस्कार वर्णनके पर्यंतमे उन संस्कारोंमें आवश्यक सामग्रीकी सूचि दी है, वैसे ही यहाँ भी गर्भाधानावश्यक सामग्रीकी सूचि दी है।

चतुर्दश स्तम्भः पुंसवन संस्कार--गर्भावस्थाके आठ मास व्यतीत होने पर और सर्व दोहद पूर्ति बाद यथायोग्य समयमें पुंसवन कर्म किया जाता है। जिसमे सर्व विधि गर्भाधानकी तरह करनेका विधान किया गया है।

पंचदश स्तम्भः-जन्म संस्कार-अनुमानित समय पर कुलगुरु और ज्योतिषीका आना, जन्म होने पर जन्मक्षण जानकर जन्म-लग्न धारण करना, नालोच्छेद पूर्व दान-दक्षिणा, श्रावक- गुरू द्वारा मंत्रोच्चारसे आशीर्वाद, नालोच्छेद, सात बार अभिमंत्रित जलसे बालकका स्नान, पश्चात् रक्षामंत्रसे मंत्रित भस्मादिकी गुटकी, काले सूत्रमें लोहा-वरुणमूल-रक्त चंदनादिके टूकड़े- कौडीके साथ बांधकर, उसे कुलवृद्धा स्त्रियों द्वारा बालकके हाथ पर बंधवानेका विधान किया गया है।

षोड़श स्तम्भः--चंद्र-सूर्य दर्शन--जन्म दिनसे तिसरे दिन कुलगुरु द्वारा अर्हत्पूजन पूर्वक जिन प्रतिमाके सामने स्वर्णादि धातुमय या रक्तचंदनादि काष्टमय सूर्यकी प्रतिमाकी स्थापना और सूर्य सम्मुख ले जाकर सूर्यदर्शन एवं इसी तरह उसी रात्रिको चंद्रकी प्रतिमा स्थापन और दर्शन मंत्रोच्चारपूर्वक करवानेका विधान किया गया है।

सप्तदशस्तम्भः--क्षीरासन--बालक और माताको अभिषेक-मंत्रोच्चारसे आशीर्वाद और बालकको स्तनपान करवानेका विधान किया है।

अष्टादश स्तम्भः--षष्ठी संस्कार--जन्मके छठे दिन संध्या समय षष्ठी पूजन-रात्री जागरिका-प्रातः देवदेवी विसर्जन और कुलगुरु द्वारा पंचपरमेष्ठि मंत्रसे मंत्रित जलसे अभिषेक और मंत्रपूर्वक आशीर्वाद प्रदानका विधान किया है।

एकोन विंशति स्तम्भः--शुचिकर्म संस्कार--निषेधित नक्षत्रोंके अतिरिक्त सूतक दिन पूर्ण होने पर कुलवर्गादि संबंधियोंको बुलाकर शुचिकर्म करना-बालकके मातापिता भी पंचगव्यसे स्नान करके चैत्यजुहार, पूजा, गुरुवंदन, कुलगुरु, कुलवर्गादि सभीका आहारादिसे सत्कार-दानादिका विधि निर्दिष्ट किया गया है।

विंशति स्तम्भः--नामकरण--शुचिकर्म दिन या दो-तीन दिनमे कुल वृद्धोकी विनतीसे, योग्य मुहूर्तमे, ज्योतिषी, पंचपरमेष्ठि स्मरणपूर्वक जन्म-पत्रिका बनाकर, द्वादश लग्नका पूजन करवाकर, बालकके नामाक्षर प्रकट करे और कुल वृद्धाओसे बालकका जाति-गुणोचित नाम प्रकट करे। जिनमंदिरमे जिनपूजा-वंदनादि करके, पूजा-द्रव्य रखकर नाम सुनाये और यति-गुरुके पास भी वंदन करके-वासक्षेप पूर्वक, कुलवृद्धाके अनुवाद रूप यति गुरुसे नाम स्थापन करवाये। अतमे गुरुको एव अन्यजनोको यथोचित दानका विधान किया गया है।

एकविंशति स्तम्भः--अनुप्राशन--कुलगुरुके पास श्रीजिनमंदिरमें भगवंतका बृहत्स्नात्रविधिसे पंचामृत-स्नात्र करवाकर अमृताश्रव मंत्रसे श्रीगौतमस्वामी, कुलदेव-देवी आदिको नैवेद्य चढ़ाकर, बालक-बालिकाकी ६ या ५ मासकी उम्र होने पर शुभ मुहूर्तमें, उनके मुखमें आर्युवेद मंत्र तीन बार पढ़कर अन्नप्राशन (अन्नाहार प्रारम्भ) करवायें।

द्वाविंशति स्तम्भः--कर्णवेध--शुभ मुहूर्तमें अमृतामंत्र-मंत्रित जलसे माँ-बेटेको सधवाओं द्वारा स्नान-पौष्टिक-मात्राष्टक पूजनादिके पश्चात् कुलदेव-स्थान, पर्वत, नदी तट या घरमें पूर्वाभिमुख बिठाकर आर्यवेद मंत्रपूर्वक कर्णवेध-धर्मगुरुसे वासक्षेप ग्रहण और अंतमें घर जाकर कर्णाभरण पहरायें (यथोचित दान-भक्ति भी करें)

त्रयोविंशति स्तम्भः--चूडाकरण (मुंड़न)--शुभ मुहूर्तमें कुलाचार करके, बालकका बृहत् स्नात्रविधिकृत स्नात्रजलसे शांतिदेवी मंत्रपूर्वक सिंचन-कुलगुरु द्वारा सात बार आर्यवेद मंत्र पढ़कर नापित द्वारा मुंडन-पंचपरमेष्ठि स्मरणपूर्वक स्नान-विलेपन-वस्त्रालंकारसे विभूषित बालकको धर्मगुरुके पास वासक्षेपपूर्वक आशीर्वाद ग्रहण करवानेका विधान किया है।

चतुर्विंशति स्तम्भः--उपनयन संस्कार--इसका अर्थ, माहात्म्य, आगमाधारित जिनोपवीत स्वरूप, (एक-दो तीन अग्रवाले) जिनोपवीतका कारण, धारक व्यक्तिकी योग्यता, धारण करनेका कारण, परमतमें यज्ञोपवीतका स्वरूप आदिको स्पष्ट करते हुए ज्योतिष् विषयक ग्रहादिके प्रभावादिकी चर्चा करके शुभमुहूर्तमें व्रत ग्रहणकी प्रेरणा दी है, साथ ही उपनयन संस्कार विधि-वेशपूजन-रात्रि जागरिका, स्नान-मुंड़न-वस्त्र परिवर्तन स्थापित समवसरण स्थित अर्हत् बिम्बोंकी प्रदक्षिणा-नमस्कार पूर्वक-स्तोत्र, सूत्र, मंत्रादि की विधिपूर्वक अनुष्ठान करते हुए गुरु द्वारा मंत्र प्रदान और उसी वक्त मंत्रका माहात्म्य और प्रभावका स्पष्टीकरण होता है। तत्पश्चात् जैन परंपरानुसार व्रतादेशके लिए, व्रतधारी, योग्य वेश धारण करके जिनपूजा-गुरुवंदनादि करते हुए, पंचपरमेष्ठि स्मरणपूर्वक गुरुसे अनुज्ञाकी याचना करने पर गुरु, शिष्यको आदेश-समादेश, आज्ञा-अनुज्ञा प्रदान करते हैं। उस समय उन व्रतोंका स्वरूप, ब्राह्मणादि वर्णानुसार करणीय-अकरणीय आचारादिका स्व-स्व वर्णानुसार उपदेश-आदेश-समाचारीका कथन करते हैं। अंतमें गुरु-शिष्य जिनमंदिरमें चैत्यवंदना करते हैं।

जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यने आठ, दस, बारह वर्षकी उम्रमें व्रत ग्रहण किये हैं, वह सोलह वर्ष पर्यंत पालन करके (अथवा यथाशक्ति पालन करके) व्रतको विधिपूर्वक विसर्जित करते हैं और गृहस्थ वेश धारण करते हैं। उस समय गुरुजी उपनयन विषयक व्याख्यान करके उसके सुष्ठु प्रकारसे ग्रहित जिनोपवीत आजीवन सद्धर्मवासनामय रहनेके आशिष देते हैं। शिष्यकी विनतीसे गृहस्थानुकूल अभयदानादि धर्म स्वरूप दर्शाते हैं। अतमे शुद्रवर्ण शिष्यके लिए 'उत्तरीय न्यास' विधि और व्रतभ्रष्ट-अज्ञानी-कुलहीनादिके लिए 'बटूकरण विधि' प्ररूपित करके इस स्तभको पूर्ण किया है।

पंचविंशति स्तम्भ--अध्ययनारम्भ विधि--शुभ मुहूर्तमें गुरु म के वासक्षेप-मंगल आशीर्वचन रूप

संबलसे ज्ञानार्जनका शुभारम्भ मंदिर-उपाश्रय या कदम्ब वृक्षकेनीचे बैठकर सारस्वत आदि मंत्र पूर्वक करना चाहिए।

षड्विंशति स्तम्भः--विवाह विधि--इसके अंतर्गत विवाह योग्य वर-कन्या, शुद्धि, गुण, आयु, आदिके साथ विवाहके प्रकारोंकी चर्चा करते हुए वर्तमानमें प्रसिद्ध और स्वीकार्य प्राजापत्य विवाहविधि-आर्यवेद मंत्रोच्चार पूर्वक विस्तारसे दर्शायी है। जिसमें प्रमुख रूपसे मातृ-कुलकरकी स्थापना, बारात चढ़ानेकी विधि, हस्तबंधन, अग्निन्यास, लाजाकर्म (मंगलफेरा), कन्यादान, करमोचन, मदनपूजा, क्षीरान्न भोजन, सुरत प्रचार, मातृ-कुलकरादिका विसर्जन आदि अनेक विधि आर्यवेद-मंत्रपूर्वक प्ररूपित करते हुए अंतमें वासक्षेपपूर्वक गुर्वाशीष प्राप्तिका विधान किया गया है।

सप्तविंशति स्तम्भः--व्रतारोपण संस्कार--इस स्तम्भमें सम्यक्त्व-मिथ्यात्वका स्वरूप, सुदेव-गुरु-धर्म और कुदेव-गुरु-धर्म--स्वरूप; मिथ्यात्वके पांच प्रकार, सम्यक्त्वके--पांच लक्षण, पांच भूषण, पांच दूषण, महत्व--मनुष्य भवकी दुर्लभता, भक्ष्याभक्ष्य विचार, बाईस अभक्ष्य स्वरूपादि, व्रतारोपणकी आवश्यकता और माहात्म्यादिका वर्णन करते हुए मार्गानुसारी अथवा इक्कीस गुणधारी--श्रावक, या आचार संपन्न-छत्तीस गुणधारी आचार्य-गुर्वादिके सम्मुख (उपनयन संस्कार-विधि सदृश समवसरणकी साक्षी युक्त) सम्यक्त्व सामायिक व्रत अंगीकार हेतु जाते हैं, और गुरुभी, योग्य शिष्यको आगमविधि अनुसार विविध मंत्र-सूत्र-स्तोत्रादिसे विभिन्न आदेश-वासक्षेप-आशीर्वाद पूर्वक सम्यक्त्व सामायिक व्रतोच्चारकी विधि करवाते हैं।

अष्टविंशति स्तम्भः--व्रतारोपण संस्कार (देशविरति)--पूर्व व्रतारोपणवत् बारह व्रतोच्चारणमेंभी नंदि, चैत्यवंदन, कायोत्सर्ग, वासक्षेपादिपूर्वक नंदिक्रिया करनेके पश्चात् द्वितीय दंडकोच्चार करके तीन बार नमस्कार महामंत्रपूर्वक, देशविरति, सामायिक दंडक उच्चारपूर्वक बारह व्रत यथाक्रम अथवा अनुकूलतासे न्यूनव्रत-यावज्जीव या मर्यादित समयके लिए अभिलाप सहित उच्चारण पूर्वक धारण करवाये जाते हैं। (यहाँ प्रत्येक व्रतमें करणीय-अकरणीय, आचरणीय-अनाचरणीयकी धारणा विधिकी स्पष्टता भी की गई है।) पश्चात् श्रावक योग्य ग्यारह प्रतिमा (वर्तमानमें चारका वहन शक्य-शेषका व्यवच्छेद) का वर्णन विधिपूर्वक दर्शाया है।

एकोनत्रिंशति स्तम्भः--(उपधान तप) व्रतारोपण संस्कार--जैसे साधुओंको श्रुतग्रहणके लिए योगोद्वहन करना आवश्यक है वैसे गृहस्थको भी पंचपरमेष्ठि मंत्र, इर्यापथिकी, शक्र-चैत्य-चतुर्विंशति-श्रुत-सिद्ध-स्तव आदि सूत्र ग्रहणके लिए उपधानोद्वहन करना होता है-उसीका विधि इस स्तम्भमें निरूपित किया गया है। श्रावकको अवश्य आचरणीय 'उपधान'की व्याख्या करते हुए 'नीशिथ सूत्र'के उपधान प्रकरणाधारित सपूर्ण विधि यहाँ उद्धृत की गई है। श्री गौतमकी पृच्छाके प्रत्युत्तरमे श्री महावीर स्वामीने स्वय उपधान वहनमें ही जिनाज्ञा पालन और आराधना प्ररूपी है, बिना उपधानके श्रुतग्रहण-जिन, जिनवाणी, श्री सघ एव गुरुजनोकी आशातना रूप-भवभ्रमणका हेतु है। श्रुतग्रहणके पश्चात् भी उपधान वहनसे सम्यक्त्व प्राप्ति सुलभ होती है। यहाँ

श्रुताभ्यासकी प्रविधि, गुण योग्यता, समय, स्थान, भावादि; आक्षेपणि आदि चार धर्मकथा, देव-गुरुकी त्रिकालिक आराधनाका लाभालाभ और माहात्म्यका वर्णन किया गया है।

अंतमें उपधान तपकी पूर्णाहुतिके पश्चात् तत्काल या एकाध दिनांतरमें उपधानके उद्यापन रूप माल्यारोपण करनेकी विधिकी प्ररूपणा करते हुए इस स्तम्भको पूर्ण किया है।

<u>त्रिंशति स्तम्भः</u>--व्रतारोपण संस्कार-(श्रावककी दिनचर्या)– यहाँ व्रतधारी श्रावककी दिनचर्याका आलेखन करके उसी प्रकार अप्रमत्तचर्या आचरनेवाले भव्यजीवके आत्म कल्याणकी वांछा की गई है (इसका विस्तृत स्वरूपसे विवेचन ग्रन्थकारके 'जैन तत्त्वादर्श' ग्रंथ, परिच्छेद-९ "धर्म तत्त्व स्वरूप निर्णय" में किया–गया–है।) यहाँ 'अर्हत्कल्प' पर आधारित स्नात्रपूजा विधि-मंत्रोच्चारपूर्वक दर्शायी है जो वर्तमानमें प्रचलित नहीं है।

<u>एकत्रिंशत् स्तम्भः</u>- इस स्तम्भमें अंतिम समय जानकर श्रावकको समाधि-मरण प्राप्ति हेतु अंतिम आराधना करवानेकी विधि दर्शायी है। जिसके अंतर्गत चतुर्विध संघ समक्ष गुरु द्वारा नंदिकी विधि करवाकर बारह व्रत उच्चारण (बारह व्रतधारीको पुनः स्मरण), पूर्वके अनंतभव और वर्तमान भवमें सकल जीवराशिके किसी भी जीवकी किसी भी प्रकारसे विराधना, अपराध, अठारह पाप स्थानक सेवनके लिए मन-वचन-कायासे निंदा-गर्हा और क्षमायाचना एवं जिसे जयणापूर्वक जिनपूजादि कार्योंमें लगाये हों उनकी अनुमोदना-अभिनंदन; इस भवके त्रिकरण-योगके शुभ व्यापारकी अनुमोदना, अशुभकी निंदा-गर्हा। व्रतधारीको बारह व्रतके १२४ अतिचारोंकी याद करवाकर आलोचना और प्रायश्चित्त; सर्व जीवोंसे क्षमाका आदान-प्रदान, सर्व जीवसे मैत्रीभाव, चार मंगल-शरण्योंका शरण अंगीकरण, १८ पापस्थानकोंका व्युत्सर्जन, कभी सागारी या निरागारी अनशन स्वीकार, चतुर्विध संघसे क्षमा याचना पूर्वक दान-संघ सत्कार-पूजादि उत्तम कार्य करना-करवाना-अनुमोदना करनी और अंत समय समाधि के हेतु निरंतर श्री नमस्कार महामंत्र स्मरण-रटणपूर्वक देहत्याग आदिकी प्ररूपणा की गई है। तदनन्तर शबकी अग्नि संस्कार विधि-भस्मका जलप्रवाह-सूतक विचारादिके वर्णनके साथ सोलह संस्कार वर्णन समाप्त होता है।

अंतमें सोलह संस्कार इस ग्रन्थमें ग्रथित करनेका हेतु, लौकिक व्यवहार रूप प्ररूपणा और आगम सम्मतताका उल्लेख करके जिनाज्ञा विरुद्धके लिए नम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते हुए इस स्तम्भको पूर्ण किया है।

<u>द्वात्रिंशत् स्तम्भः</u>-जैनधर्मकी प्राचीनताका निर्णय--इस स्तम्भमे जैनधर्मकी प्राचीनताको प्रतिपादित करनेके लिए ग्रंथकारने अथक परिश्रम करके अनेक प्रमाण पेश किये हैं-यथा-वेदोमे जैन मतोल्लेखके अभावको वेदोकी अनेक शाखाके नष्ट होनेके कारण असिद्ध, शंकराचार्यादि द्वारा वेदोके अर्थोमें उलट-पुलट; अनेक जैनाचार्यों द्वारा अपने ग्रन्थोमे (उद्धृत) प्ररूपित अनेक वेदश्रुतियोंका वेद-आरण्यक-पुराण-उपनिषदादिमे प्राप्त होना; व्यासजी कृत 'ब्रह्म सूत्र'मे प्ररूपित सप्तभंगीका खंडन; महाभारत, मत्स्य पुराण, यजुर्वेद संहिताका महिधर कृत भाष्य, तैत्तरीय

आरण्यक आदिके अनेक प्रसंगोंकी प्ररूपणा; सायणाचार्यजी, मणिलाल नभुभाई आदिके कथनोंका आधार; आरण्यकमें प्ररूपित पारमार्थिक भावयज्ञका आत्मयज्ञ स्वरूपादि अनेक प्रबल युक्तियुक्त उक्तियाँ, कथन, प्रसंग निरूपणादिके आधारों पर जैनधर्मकी प्राचीनता सिद्ध की है। इसके अतिरिक्त शाकटायन और न्यासके मंगलाचरण एवं जैनेन्द्र तथा इन्द्र व्याकरण, सकल विश्वकी सर्व विद्यायुक्त विभिन्न शब्दादि प्राभृतो एवं परवर्ती आचार्योंके व्याकरणके अनेक उत्तम ग्रन्थोंसेभी जैन साहित्य 'व्याकरण सहित' सिद्ध करके 'जैन' शब्दका मूलधातु 'जि-जय'की भी प्राचीनता सिद्ध की है।

जैन धर्मशास्त्रोंके सिद्धान्त-कर्म विज्ञान, साधु सामाचारी, नवतत्त्वादिका इंगित मात्रभी वेदमें न होनेसे "जैनमत वेदाधारित है"-इस कथनको भी असिद्ध करते हुए 'वेदादिके सार वचनोंका जैन सिद्धान्तोंसे ग्रहण'का आक्षेप किया है। अंतमे धनेश श्रावकको प्राप्त प्राचीन तीन प्रतिमाके उद्धरणसे–सर्व प्रकारसे जैनधर्मकी प्राचीनता सिद्ध की है।

निष्कर्ष–यहाँ वेदोंकी निंदा द्वेष बुद्धिसे नहीं लेकिन उनके हिंसकपनेके कारण की गई है। अतः उनमें प्ररूपित निवृत्ति मार्ग तो युक्तियुक्त हैं। संसारसे निर्वेद और वैराग्यप्रेरक प्ररूपणा सर्वज्ञ वचन प्रमाणित होनेसे उन्हें तो श्री सिद्धसेन दिवाकरजी आदिनेभी प्रतिपाद्य माना है। अतः वाचक वर्गको निष्पक्ष एवं माध्यस्थ बुद्धिवान् ऐसे महात्मा, परिव्राजक श्री योगजीवानंद स्वामी परमहंस सदृश सत्य स्वीकारनेके लिए ग्रन्थकारने प्रेरणा दी है। (श्री आत्मानंदजीके नाम उनका इस तरहका स्वीकार-पत्र और मालाबंध प्रशस्ति-श्लोकभी यहाँ प्रस्तुत किया है)

<u>त्रयस्त्रिंशति स्तम्भः–बौद्धमत एवं दिगम्बरोंसे प्राचीनता और स्वतंत्रता</u>–

"जैन मत बौद्ध मतकी शाखा है"– इस धारणाको निरस्त करने एवं जैनमतकी स्वतंत्रता एवं प्राचीनता सिद्ध करनेके लिए हर्मन जेकोबी, मेक्स-मूलर आदि योरपीय विद्वानोंके अभिप्रायोंको उद्धृत किया गया है। तदनुसार उन विद्वानों द्वारा बौद्ध धर्मग्रन्थ 'धम्मनिकाय' आदि ग्रन्थ और जैनोके उत्तराध्ययनादि आगम प्रमाणोंसे एवं अचेलकपना-निर्ग्रंथपना आदि आचार-व्यवहार प्रमाणोंके अनेक उद्धरण दिये गये हैं।

दिगम्बरोंसे प्राचीनता और विपरित प्ररूपणाओंकी असिद्धि–दिगम्बर और श्वेताम्बरोंकी उत्पत्तिकी विरोधाभासी प्ररूपणाओंका विश्लेषण करके उत्पत्तिके समय-स्वरूप-कारणोंकी यथार्थ प्ररूपणा करनेका प्रयत्न किया है, जिसके अंतर्गत 'मूलसंघ पट्टावलि', 'नीतिसार'मे चार उपभेदोकी तवारिख एवं उत्पत्ति विषयक विसंवादिता, दिगम्बरोकी 'सर्वार्थ सिद्धि' भाष्य टीकामे श्वेताम्बर मतोत्पत्ति विषयकी, मथुरा टीलेसे प्राप्त श्रीमहावीरजीकी प्रतिमाके शिलालेखसे असिद्धि; देवर्द्धिगणिजी द्वारा शिथिलाचार पोषक आचारागकी रचना, केवली आहार स्त्रियोकी मुक्ति स्त्री तीर्थंकर, उपकरणोंका परिग्रह, सपरिग्रहीकी मुक्ति, रोगी ग्लानादिके लिए अभक्ष्य आहारकी निर्दोषता आदि अनेक विषयोंकी विपरित प्ररूपणाओके प्रत्युत्तर; सर्व आगम विच्छेद तथा ज्ञानी धरसेन मुनि द्वारा भूतबलि-पुष्पदंतको ज्ञान प्रदान और उन दोनो द्वारा धवल, जयधवल, महाधवलकी रचना-उन्ही पर आधारित 'गोम्मटसार'की

रचना, परवर्ती अनेक आचार्योंकी अनेक शास्त्र रचनाओंकी विपरित-उत्सूत्र-प्ररूपणाओंका निर्देशन कराते हुए; सम्यक्त्व-प्राप्ति विषयक विचार और तीर्थंकरोंके शासनमे चतुर्विध संघ प्रमाण होनेसे, दिगम्बरोंका श्रावक-श्राविका रूप दुविध संघसे जिनाज्ञा भंग और मिथ्यात्व प्ररूपणाका जिक्र किया गया है।

तदनन्तर सामान्य प्रश्नोत्तर द्वारा धर्म स्वरूपकी प्ररूपणान्तर्गत अरिहंत परमात्माकी विविध प्रकारसे पूजा, बीस पंथी-तेरापंथीकी 'पुष्प-पूजामें हिंसा'की मान्यताका खंडन, पूजाके पांच फल, जिनमंदिर एवं प्रतिमा निर्माणके फल, चार प्रकारसें पूजाविधि, उपकरण एवं उपधिकी चर्चा, 'बोधपाहुड वृत्ति' अनुसार 'जिनमुद्रा-वर्णन'की अयोग्यता और असिद्धि, गृहस्थके अतिथि संविभागके चार भेद, बकुश निर्ग्रंथके भेद; "तीर्थंकर केवलीका शरीर परम औदारिक पुद्गलोंका" होनेके कथनकी 'काय-बोध-पाहुड' आधारित असिद्धि, और 'स्त्री मुक्ति' की "त्रैलोक्य सार" ग्रन्थ द्वारा सिद्धि; "नग्न-दिगम्बर-मुनि-चिह्न" बिना मुक्तिके इन्कारको ब्रह्म देवकृत 'समयपाहुड'की वृत्ति आधारित असिद्धि की है। अंतमें सर ए. कनिंगहामके **"Archieological Report"** के तेरहवें वॉल्युमसे 'मथुरा शिलालेखोंकी आधार भूत नकलोंके उद्धरणसे जैनधर्मकी प्राचीनता और सत्यता एवं दिगम्बर मतकी परवर्तीताको सिद्ध करते हुए इस स्तम्भको परिपूर्ण किया गया है।

<u>चतुस्त्रिंशति स्तम्भः</u>*—अर्वाचीन शिक्षितोंकी शंकाओंका समाधान*—(१)अवसर्पिणी काल प्रभावके कारण सांप्रत जीवोंके आयु-अवगाहना आदिके कारण श्री ऋषभदेव भगवानकी पांचसो धनुषकी काया और ८४ लक्ष पूर्वका आयु अशक्य-सा प्रतीत होता है-ऐसी प्ररूपणाओंके लिए जो तार्किक प्रमाण पेश किये हैं वह इस प्रकार है--२४ किलोग्राम गेहुं समा सके ऐसी मनुष्यकी खोपड़ी और दो तोला वजनके दांत वाले राक्षसी कदके मनुष्यका हाड ई.स. १८५० में मारुआं नज़दीककी जमीनसे निकलना; इसके अतिरिक्त तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओंके लेख, भूस्तर शास्त्रीय संशोधन, हिन्दू-ईसाइ आदिके धर्मग्रन्थादिके प्रमाणोंके साथ वर्तमानमें भी अन्यान्य देशोंके मनुष्योंकी आयु-अवगाहनादिकी प्रत्यक्ष न्यूनाधिकतादि अनेक बेमिसाल तर्कोंसे उपरोक्त प्ररूपणा सिद्ध की है। (२) जैन मतानुसार "पृथ्वी स्थिर और सूर्य-चंद्रादि भ्रमणशील"-इसेभी अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है (अद्यतन विज्ञान भी इस तथ्यके सत्यासत्यके परीक्षणके लिए उद्यमशील है, लेकिन अब तक उनको उत्तर-दक्षिण ध्रुवोंका ही पता नहीं और न वे उनमें से किसीका उल्लंघन भी कर सके हैं। चंद्र पर पहुँचनेके और अन्य ग्रहोंके विषयमें भी जो तथ्य प्रकाशित हुए और हो रहे हैं, उन्हे भी जैन मुनियो द्वारा वर्तमानमे ललकारा गया है, लेकिन अद्यावधि उनका कोई प्रत्युत्तर नहीं। वर्तमानमे पाश्चात्य देशोमे भी उनकी कपोलकल्पितता और मिथ्याजाल-प्रपंचोका पर्दाफाश हो चूका है।) हिन्दू शास्त्रोंके आधार पर भी सूर्यकी भ्रमणशीलता सिद्ध की गई है। (३) भरतखण्डका स्वरूप, आर्य-अनार्य देशोंके नाम, और उनका भौगोलिक स्वरूप-की सिद्धिके लिए ई.१८९२की नवम् ऑरिएन्टल कॉंग्रेसमें मॅक्समूलर, डॉ.बुल्हर आदिके प्रस्तुत हुए निबन्धादिके प्रमाण पेश किये हैं। अन्तमे नव प्रकारके आर्योंके लक्षण-गुणादिके स्वरूप वर्णन

करते हुए इस स्तम्भको पूर्ण किया गया है।

पंचत्रिंशति स्तंभ:--शंकराचार्यका जीवनवृत्त--इस स्तम्भमें जैन-जैनेतरोंकी अनभिज्ञता दूर करने हेतु शंकराचार्य (शंकरस्वामी)की उत्पत्ति और जीवन वृत्तान्त उनके ही शिष्य अनतानंदगिरि कृत एवं माधवाचार्य कृत 'शंकरविजय' नामक ग्रन्थोंके आधार पर निरूपित किया गया है, जिसके अंतर्गत बिना पिताके बालक शंकरका उपहास जनक जन्म-उनकी असर्वज्ञता, सर्व शक्तिमानताका अभाव, कामुक विलासिताके कारण ही उर्ध्वरेता: से अधोरेता: होना, जैनमत खंड्नकी कपोल कल्पितता एवं किसी जैनसे विवादकी हास्यास्पद प्ररूपणा आदिके प्रत्युत्तर देते हुए अभिनव गुप्त-भैरव-कापालिकका हत्यारा पद्मपादकी अज्ञानता और राग-द्वेष सिद्ध किये हैं। माधवाचार्यजीके 'शंकरविजयमें' बौद्धोंके और आनंदगिरिजीके 'शंकरविजयमें' जैनोंके कत्लके विसंवादी कथन-कुमारिल और शंकराचार्य विषयक, डो. हंटर कृत 'हिंदुस्तानका संक्षिप्त इतिहासके संदर्भसे और मणिलाल नभुभाईके 'सिद्धान्त सार' एवं 'प्राचीन गुजरातका एक चित्र' आदिके संदर्भ देकर असिद्ध प्रमाणित किया है।

षट्त्रिंशति स्तम्भ:--प्रमाण-नय-स्याद्वाद स्वरूप--"प्रश्न द्वारा विधि और निषेधरूप भेदसे अनेक धर्मात्मक वस्तुमें एकएक धर्मकी अपेक्षा सर्व प्रमाणोंसे अबाधित और निर्दोष अनेकान्त द्योतक 'स्यात्' अव्ययसे लांछित सात प्रकारकी वाक्य रचना (उपन्यास)को 'सप्तभंगी' कहते हैं।"- इस प्रकार सप्तभंगीकी व्याख्या पेश करके शंकराचार्यजीके सप्तभंगीके अयथार्थ खंड्नको युक्ति युक्त प्रमाणों द्वारा निरासित किया गया है। अनंत धर्मात्मक, अनंत पदार्थ होने पर भी प्रत्येक पदार्थके प्रत्येक धर्मके परिप्रश्नकालमें एक-एक धर्ममें एक एक ही सप्तभंगी होती है। अतः अनंत धर्मकी विवक्षा विविध सप्तभंगियोंकी अनेक कल्पनाओंसे करना अभीष्ट है किंतु अनंतभंगीकी कल्पना अभीष्ट नहीं।

यहाँ 'स्यात्' सहित सप्तभंगीका स्वरूप; सकलादेश-विकलादेश (अर्थात् प्रमाण-नय) के स्वरूप; शंकराचार्यकी और व्यासजीकी-एकही परमब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप-मान्यता, अविद्या वासना, मायाकी अनिर्वाच्यता आदि अनेक मान्यताओंका 'प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार' सूत्रानुसार खंड्न करते हुए जैनमतमें आत्माका स्वरूप; कर्म-विज्ञान, स्याद्वादका सार, आत्माके तीन प्रकार, द्रव्यका स्वरूप-लक्षण, षट्द्रव्योंके अस्तित्वका स्वरूप, द्रव्योंके स्वभाव (इन स्वभावोंको न माननेसे व्युत्पन्न अनेक प्रकारकी असमंजसताका वर्णन) उनका विविध नय प्रकारोंमें समन्वय- नयका स्वरूप-लक्षण, नयकी अनेक परिभाषाये, नयाभासकी परिभाषाये, नयके प्रकार ('अनुयोग द्वार' वृत्यानुसार-जितने वचन उतने ही नय प्रकार-आधारित नय स्वीकार्य-नयाभास नहीं), सुनय एवं दुर्नयके विशेष बोध हेतु 'सप्तशतार'के 'नयचक्र' अध्ययन-'द्वादशार नयचक्र' आदि न्याय विषयक ग्रन्थोंके संदर्भ-द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक (निश्चय-व्यवहार)नयके प्रमुख सात भेद, और उन्हींके आधारित २००, ४००, ५०० ६००, ७०० और उत्कृष्ट असंख्य भेदोंकी विवक्षा करते हुए स्याद्वाद न्यायाधीशके आधीन अनेक नयोंके विवाद उपशमनको

इंगित करते हुए इस स्तम्भको पूर्ण किया गया है।

उपसंहारः–'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थरूपी महलको विविध ३६ स्तम्भोंसे सुशोभित करते हुए ग्रन्थकारने उसकी सजावट रूप सत्य धर्मका निश्चय और निश्चित धर्मके स्वीकार; जैन धर्मकी प्राचीनता-अर्वाचीनता और शाश्वतता; 'श्रीमहादेव स्तोत्रा'धारित त्रिमूर्तिका अर्हन्‌में तथा दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय रूपमे स्थापन; "अयोगव्यवच्छेदा"धारित वीतराग ही सत्य उपदेष्टा और नयवाद-स्याद्वाद ही यथार्थ पदार्थ स्वरूप कथनके लिए शक्तिवान्; जैनाचार्योंकी माध्यस्थता पूर्वक रत्नत्रयादि गुणधारीको वंदना, 'लोकतत्त्वनिर्णया'नुसार संसार स्वरूप-लोकालोकाकाश स्वरूप; सांख्य-वेदाधारित ईश्वर कृत सृष्टि सृजन-रक्षण-प्रलयादि मान्यता और उससे लाभालाभ-ईश्वरको प्राप्त कलंक; वेदोकी 'ईश्वरकृत या अपौरुषेय' होनेकी मान्यताका उन्हीं वेदश्रुति-श्लोक-मंत्र आधारित युक्तियुक्त तर्क द्वारा खंडन; षड्दर्शनाधारित गायत्रीमंत्रके विविध अर्थ विवरण और बीज मंत्रोंकी प्ररूपणा; वेदार्थोमें किये गये गंभीर रूपसे विपरित अर्थ-निरूपणोंका निर्देशन; 'वेदोंके खंडनके निषेध'को स्वयं की निर्बलता छिपानेके हेतु रूप सिद्धि; सोलह संस्कारोंका श्रीवर्धमान सुरीश्वरजीके 'आचार दिनकर' आधारित वर्णन-इनका इस ग्रंथमें ग्रथित करनेका हेतु-उसकी लौकिक व्यवहार रूप प्ररूपणा और आगम सम्मतता; वेद निरूपित हिंसकताकी निंदा और सार वचनोंकी अनुमोदना; जैनधर्मकी प्राचीनताका निर्णय-बौद्ध मतसे प्राचीनता और स्वतंत्रता-दिगम्बरोंसे प्राचीनता और उनकी विपरित प्ररूपणाओंकी असिद्धि; जैनधर्मोंकी प्ररूपणाओमें अर्वाचीन शिक्षितो द्वारा शंका और उनका अनेक प्रमाणोंसे समाधान; प्रमाण-नय-स्याद्वाद-सप्तभंगी आदिकी व्याख्या-प्रकार-स्वरूपादिका विशद वर्णनादि अनेक विभिन्न प्ररूपणाओंको समाहित किया है।

अंतमें महान, नीडर, वीर ग्रन्थाकारने अपनी लघुता-भवभीरुता प्रदर्शित करते हुए पूर्वाचार्योंकी प्रविधि समाश्रित्य ग्रन्थ-रचनामे स्वदोषके लिए क्षमायाचना और विद्वद्वर्योंसे उन्हे संशोधित करनेकी विनती करके 'तत्त्व निर्णय प्रासाद'-महान ग्रन्थको परिपूर्णता प्रदान की है।

---- जैन मत वृक्ष ----

ग्रन्थ परिचय-

"जैनमत वृक्ष" रचनाके बीज, सिद्ध कलाकार श्री आत्मानंदजी म.सा.के मेधावी मस्तकमें से अंकुरित होकर अनादिकालीन विश्वप्रवाह रूपको लेकर वृद्धिगत होते होते आपके वि.सं. १९४२के सुरतके चातुर्मासमे विशाल वृक्षरूप धारण कर गया; जिसे स. १९४८में प.पू. श्रीमद्विजयवल्लभ सुरीश्वरजी म सा ने लिपिबद्ध करके प्रकाशित करवाया लेकिन श्री आत्मानंदजी म के अदाजानुसार, कई कारणोसे यह विशेष लोकोपयोगी न होनेसे आपकी ईच्छा और प्रेरणासे प.पू. श्रीमद्विजयवल्लभ सुरीश्वरजीने स. १९४९मे पुनः पुस्तकाकार रूपमे लिखकर स. १९५६मे श्री आत्मानद जैन सभा-पंजाब, की ओरसे प्रकाशित करवाया, जिसमे हिंसक यज्ञोत्पत्ति, बौद्ध मतोत्पत्ति आदिकी ऐतिहासिक तवारिख युक्त करके और वृक्षाकारकी छपाईकी

कुछ गलतियोंको भी सुधार करके छपवायी गयी है।

ग्रन्थ की विशिष्टतायें--इस वृक्षकी निजी अद्‌भूतता यह है कि ऐतिहासिक तवारिख जैसे शुष्क और परिश्रम साध्य विषयको भी कमनीय कलाके मनोरम स्वरूपमें मनभावन रसिकताके साथ दर्शनीय, पठनीय और मननीय रूपमें प्रस्तुत किया है। इस वृक्षका माहात्म्य तो यह है, कि, उसमें एक ही नजरमें इस अवसर्पिणी कालके अद्यावधि मानचित्रको हमारे सामने यथास्थित, फिरभी "Short & Sweet" रूपमें प्रस्तुत किया है। फनकारने अत्यंत परिश्रमपूर्वक, कसे दिमागकी कल्पनाको झंकृत करते हुए, ऐसे रंगोलीकी सजावट-सा नयनाकर्षक-चित्ताकर्षक-प्रभावोत्पादक इतिहास पेश किया है कि दर्शक प्रथम दर्शनमें ही प्रभावित होकर हर्षोल्लाससे झूम उठता है-आफरिन पोकारते हुए आचार्यश्रीको प्रशंसनीय वाक्‌पुष्पोंसे साधुवाद देने लगता है। इस संसार स्वरूपकी, फूलदान रूपमें कल्पना करके, उसमें नैसर्गिक रूपसे ही अत्यधिक मज़बूत थड़के, तीस-पैंतीस शाखा-प्रशाखा और अनेक पत्र-पुष्पोंसे भूषित इस "जैनमतवृक्ष"में निहित महत्वपूर्ण अनेक लभ्यालभ्य तथ्योंको प्ररूपित करके चित्रकारने अपने महान उद्देश्यको सिद्ध करनेमें अभूतपूर्व कामयाबी हांसिल की है। जिसकालमें ऐतिहासिकताका न अधिक मूल्य था-न महत्त्व-ऐसे अंधकारमय युगमें भी इस कदर इतिहासको कलामें ढालकर-कलात्मकता प्रदान करके-गुरुदेवने सर्वको अपनी अनूठी-औत्पातिकी मतिका परिचय करवाया है।

ग्रन्थका विषय वस्तु--प्रथम तीर्थपति श्री ऋषभदेव भ.से लेकर अंतिम तीर्थंकर पर्यंत चौबीस तीर्थंकर, उनके गणधर-गणादिका, चरम तीर्थंकर श्रीमहावीरजीकी, श्रीसुधर्मा स्वामीजीसे श्रीआत्मारामजी म. पर्यंत, सम्पूर्ण पट्ट परंपरान्तर्गत सर्व प्रमुख आचार्य (युगप्रधानादि), उनका शिष्य परिवार-शासनोन्नतिकारक कार्य, साहित्य सेवा-जीवनकाल आदिका संक्षिप्त ब्यौरा-इस वृक्षका थड रूप बना है; सांख्य-वेदान्त, वैशेषिक, मीमांसक, बौद्ध आदि दर्शनोंकी कब-कहाँसे-किससे-क्यों-किस प्रकार उत्पत्ति हुई; जैन आर्यवेद और सांप्रत कालीन अनार्य वेद-वेदांगादिकी उत्पत्ति, रचयिता, शास्त्र रचनाकाल-कर्तादिकी प्ररूपणा; आत्मिक यज्ञ और परवर्ती हिंसक यज्ञकी प्ररूपणा, प्रचलन, प्रसारण किससे-कहाँसे-कबसे-क्यों-किसविध हुआ, उनका वृत्तान्त; दिगम्बर मतोत्पत्ति और उनकी शास्त्र रचना; स्थानकवासी संप्रदायका उद्‌भव-बाईस टोले-तेरापंथी आदिका अनुवृत्त एवं भ. महावीरकी मूल पट्ट परंपराके सूरीश्वरोंका परिवार-ग्रन्थ रचनायें-शासन प्रभावक कार्य-आदि इस वृक्षकी प्रशाखा रूप नयन पथमे आते हैं; उन शिष्यों द्वारा प्रवर्तीत गण, शाखा, कुलादि इस वृक्षके पर्ण-पत्र-पुष्प रूप चित्रांकित किये गये हैं।

सोनेमे सुहागा--उपरोक्त वर्णित मूल वृक्षके दोनो पार्श्वमे दो लतायें चित्रित की हैं, जो मूल वृक्षकी सुंदरतामें वृद्धि करते हुए वृक्षकी क्षुल्लक अपूर्णताको पूर्ण करनेमे सहयोगी बनती हैं। दोनोंमे से एक ओरकी लता, इस अवसर्पिणीकालके त्रेशठ शलाका पुरुषोका जिक्र प्रदर्शित करती है, जबकि दूसरी ओरकी लता अंतिम अरिहंतके शासनकालमें हुए जैन-जैनेत्तर राजाओ द्वारा किये गए महत्त्वपूर्ण शासनोन्नतिके कार्य-धर्ममय अहिंसा आदिके प्रवर्तनरूप कार्य एवं

उनका राज्यकालादि तवारिखके रूपमें प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष--अंतमे इतना ही उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि, यह चित्रमय ऐतिहासिक-तवारिख युक्त-सुंदर कलाकृति "*जैनमततवृक्ष*" अपने ढंगकी अनूठी, अभूतपूर्व, अद्‌भूत ठोस विषयगत कल्पना कृति है; जिसे श्री आत्मानंदजी म.ने सर्वप्रथम प्रस्तुत करके ऐसे वंश वृक्षोंकी असाधारण ऐतिहासिक परंपरा प्रारम्भ की है।

चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग १-२

ग्रन्थ परिचय--इस हूंडा अवसर्पिणी कालमें भस्मग्रहादि अनिष्ट निमित्तोंके कारण, बहुलकर्मी-निबिड़, अशुभ मिथ्यात्व मोहनीय कर्मोदयवान् जीव स्वच्छंदतासे, असत्य प्रपंचोंको सत्य करनेके लिए अथवा ईर्ष्या या बड़प्पन प्रदर्शन हेतु, अपने आपको परलोकके भयसे निर्भय माननेवाले-मिथ्या प्ररूपणायें करके स्व और परका अकल्याण करते हैं। उनको सद्‌बुद्धि-प्रदान हेतु परमोपकारी श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.ने मानो प्रण ले रखा हों, इस कदर अनेक मिथ्या कुतर्कवादियोंको शिक्षा प्रदाता अनेक ग्रन्थोंकी रचना की हैं। तदन्तर्गत 'चतुर्थ स्तुति निर्णय'की रचना श्रीरत्नविजयजीम. एवं श्री धनविजयजी म.को हितशिक्षाके लिए हुई हैं।

विषय-वस्तुका निरूपण--साधकको प्रतिदिन सात बार चैत्यवंदना करनेका विधान श्री नेमिचंद्र सूरिजी कृत 'प्रवचन सारोद्धार'में किया गया है। तदनुसार--(१) रात्रि समय सोनेसे पूर्व (२) सुबह जागनेके पश्चात् (३-४) दोनों संध्यासमय प्रतिक्रमणमें (५) भोजनपूर्व (६) भोजन पश्चात् (७) श्री जिनमंदिरमें दर्शन करते समय याने भाव पूजा रूप। इसके अतिरिक्त विशिष्ट प्रसंग प्रतिष्ठाकल्प, दीक्षाप्रदान, व्रतारोपण,--चैत्यप्ररिपाटी आदिमें भी चैत्यवंदना करनेका विधान किया गया है।

इस ग्रन्थकी प्ररूपणाका विषय है (१) नित्य दोनों संध्याके प्रतिक्रमणमें आद्यंतमें चैत्यवंदना करनी चाहिए या नहीं? (२) चैत्यवंदनामें (देव-देवीकी) चतुर्थ स्तुति बोलनी चाहिए कि नहीं? (३) प्रतिक्रमणमें श्रुतदेवता-क्षेत्रदेवता-भुवनदेवतादिकी; और प्रतिष्ठा, व्रतारोपण, दीक्षा-पदवी प्रदानादि समय प्रवचनदेवी, शांतिदेवी, शासन रक्षक देव-देवी आदिके कायोत्सर्ग और थुईसे स्तवना करनी चाहिए कि नही?-ये सभी शंकाये श्री रत्नविजयजी म. द्वारा विशेषतया बृहत्कल्प, व्यवहारसूत्र, आवश्यकसूत्र, पंचाशक वृत्ति आदिके कुछ संदर्भ देकर की गई है; जिनके प्रत्युत्तरमें ग्रन्थकारने स्थानांग, सूत्रकृतांग, अनुयोगद्वार-वृत्ति, निशीथचूर्णि, आवश्कसूत्र-चूर्णि-निर्युक्ति आदि अनेक आगम शास्त्र एवं श्री नेमिचंद्र सूरि कृत प्रवचन सारोद्धार और उत्तराध्ययन वृत्ति; श्री वादिदेवसूरि कृत और श्री भावदेव सूरि कृत "यतिदिनचर्या"; श्री मानविजय उपाध्यायजी कृत धर्मसंग्रह (चैत्यवंदनाके भेद), वंदारुवृत्ति (श्रावकके आवश्यककी टीका); श्राद्धविधि, आवश्यकसूत्रकी अर्थदीपिका, श्री तिलकाचार्य कृत एवं श्री जिनप्रभसूरिजी कृत 'विधिप्रपा' (प्रतिक्रमण विधि) श्री हरिभद्र सूरि कृत पंचवस्तु, खरतर बृहत्समाचारी, तपगच्छीय श्री सोमसुंदरसूरि, श्री जिनवल्लभसूरि, श्री देवसुंदर सूरि, श्री नरेश्वर सूरि, श्री तिलकाचार्य आदि पूर्वाचार्यों की रचित समाचारियाँ, श्री शान्तिसूरिजी कृत श्री संघाचार चैत्यवंदना, देवेन्द्रसूरि कृत चैत्यवंदना लघुभाष्य, वादिदेव सूरि कृत 'ललित विस्तरा पंजिका' श्री हेमचंद्राचार्यजी कृत योगशास्त्र,

श्री धर्मघोष सूरिजी कृत संघाचार वृत्ति, कुलमंडन सूरि कृत विचारामृत संग्रह, श्री जयसिंह सूरिजी एवं उपाध्याय श्री यशोविजयजी कृत प्रतिक्रमण हेतु गर्भित विधि, संघाचार, लघुभाष्य वृत्ति, आवश्यक कायोत्सर्ग निर्युक्ति, वंदनक चूर्णि जीवानुशासन प्रकरण, पाक्षिकसूत्र, आराधना पताका, श्री नमिमुनि कृत षडावश्यकविधि, श्री तरुणप्रभ सूरि कृत षडावश्यक बालावबोध, श्री अभयदेव सूरिजी कृत पंचाशक टीका आदि ग्रन्थ रचनायें और बप्पभट्टी-शोभनमुनि आदि अनेक विद्वद्वर्यों द्वारा रचित स्तुति चौबीसीओंके संदर्भ देकर, तीन थुई आदि विधानोंको असिद्ध प्रमाणित किया है।

इसके अतिरिक्त इन देवी-देवताओंकी स्तुतिके कारणोकी चर्चा करते हुए आपने फरमाया है कि, "वैयावच्चगराणं, संतिगराणं, सम्मदिट्ठि समाहिगराणं, करेमि काउसग्गं"-अर्थात् जिनशासनके परिस्थापनादि कार्य, जिनमंदिर रक्षा, प्रवचन-शासन-उन्नति आदि रूप *वैयावृत्यके लिए*; जिनभवन पर या चतुर्विध संघ पर होनहार प्रत्यनीकोंके उपसर्गादि निवारण, विघ्नशमन, क्षुद्रोपद्रवके शमनादि रूप *शांतिकार्यके लिए*; श्री संघमें सम्यग् दृष्टि देवों द्वारा *द्रव्य और भाव समाधि एवं बोधि-सम्यक्त्व प्राप्ति तथा शुभ सिद्धिमें सहायताके लिए* प्रमादाधीन देवादिको जागृत करनेके लिए और जागृतको उन कार्योंमें स्थिरत्वके लिए उन देवोंकी उपबृंहणा पूर्वक साधर्मिक वात्सल्य-रूप काउसग्ग-जो परंपरासे मोक्षमार्गमें स्थिरीकरण और अंततोगत्वा मोक्ष-प्राप्तिके हेतु रूप-करणीय हैं; लेकिन वे देवादि अविरति होनेके कारण उनके वंदन-पूजन या सत्कारादिके लिए नहीं करना चाहिए।

सामान्यतः परम्परागत चैत्यवंदनामें चारथुई और उत्कृष्ट चैत्यवंदनामें पांच शक्रस्त्व और आठ थुई कहनेका आदेश पूर्वाचार्यों द्वारा दिया गया है। आचरणाकी परंपरा भी वैसी ही चली आ रही है। सिद्धसेन दिवाकरजी कृत "प्रवचन सारोद्धार" वृत्यानुसार चतुर्थ थुई-गणधर वाणी अनुसार, गीतार्थोंके आचरणा आदेशके कारण सर्व मोक्षार्थी जीवों द्वारा आचरणीय है। लेकिन कोई कोई आचार्यके मतसे 'चतुर्थ थुई'को अर्वाचीन माना है। अब यहाँ अर्वाचीनका अर्थ "आचरणा द्वारा कराता हुआ"-अर्थात् श्रुतरत्नाकरके विरहमें सांप्रतकालमें बिन्दु तुल्य ही श्रुतज्ञान रह जाने पर सर्वश्रुतज्ञानको, सूत्राधारित नहीं जाना जाता है। अतः बहुश्रुत पूर्वाचार्योंके आचरणानुसार परंपरागत परवर्तियोंका आचरण-वही आचरणा अथवा जो आचरण त्रिकालाबाधित रूपसे विद्यमान हों, वह आचरण ही जीत आचार कहा जाता है। अतएव अज्ञातमूल पूर्वाचार्योंकी परंपरासे अहिंसक और शुभध्यान जनक रूपमें प्राप्त आचरणा सर्व मान्य होती है। श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी कृत 'ललित विस्तरा'मे चतुर्थ थुईको मान्यता दी है, तो कुलमंडन सूरिजीकृत 'विचारामृत संग्रह'मे 'अर्वाचीन' शब्दका 'परंपरागत आचरणा' करना ही उपयुक्त माना है। अत अर्वाचीन, आचरणा, जीत आचार-आदि सभी समानार्थी माने गये हैं।

श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म ने 'पंचाशक'मे तीन प्रकारसे चैत्यवंदनाकी प्ररूपणा की है। उन्हें ही जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदोसे "बृहत्कल्प महाभाष्य"मे नव प्रकारसे निरूपित

किया गया है। इनमेंसे छठा प्रकार-तीन थुईसे देववंदनका है, जो चैत्य परिपाटी या मृतक साधुके विसर्जन पश्चात् साधुको चैत्यगृहमें परिहार्यमान तीन थुईसे चैत्यवंदना करनेका विधान बृहत्कल्पकी सामान्य चूर्णि और विशेष चूर्णि, कल्प बृहत्भाष्य, आवश्यक वृत्ति आदिके अनुसार किया गया है, लेकिन प्रतिक्रमणके आद्यंतमें चैत्यवंदना करते समय तीन थुई का किसी भी शास्त्रमें निरूपण नहीं हुआ है।

तदनंतर देवदेवियोंकी प्रसन्नताके लिए अव्रती या विशिष्ट व्रतधारी, श्रावकादि योग्य आराध्य विविध तप-रोहिणी, अंबा, श्रुतदेवता, सर्वांगसुंदर, निरुजशिखा, परमभूषण, सौभाग्य कल्पवृक्षादि तप-अव्युत्पन्न बुद्धिवाले जीवोंके लिए अभ्यास रूप हित, पथ्य, सुखदायी होनेसे वांछासहित या वांछारहित करनेसे उपचारसे मोक्षमार्गकी प्रतिपत्ति हेतु करनेकी प्रेरणा 'वंदित्ता सूत्र' आधारित दी गई है।

पंचांगीको ही मान्य और प्रकरणादिको अमान्य करनेवाले श्री रत्नविजयजीको, 'स्थानांग वृत्ति'में प्ररूपित श्रुतज्ञान प्राप्तिके सात अंगोंमें समाविष्ट-'परंपरा और अनुभव'-की प्ररूपणा दर्शाते हुए एवं प्रतिष्ठा-कल्प, दीक्षा-प्रदान-व्रतारोपणविधि अथवा 'चातुर्मासिक-सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करते समय देवोंके काउसग्ग और थुईसे स्तुति करना' मान्य, लेकिन नित्य प्रतिक्रमणमें ही उसके विरोधको स्पष्ट करते हुए—स्वयंकी मानी मान्यतामें बाधक प्ररूपणाओंको अमान्य करनेवाले *असमंजस प्रलापक*, अपनी पट्टावलीमें तपगच्छ प्रवर्तक महातपा श्री जगच्चंद्र सूरि, विजयदेव सूरि, विजयप्रभ सूरि आदिकी परंपरा लिखनेके बावजूद भी स्वयंको तपागच्छके नहीं लेकिन सर्वसे भिन्न-ऐसे नूतन ही 'सुधर्मगच्छ'के कहलानेवाले (गुरु रूपमें मान्य करके उन आचार्योंकी समाचारी न माननेवाले) *स्वच्छंद प्रलापक, चतुर्विध संघ, पूर्वांकित जैनाचार्यों और जैनशास्त्रों के विरोधी (उन्हें असत्यभाषी माननेसे)*, *तुच्छ बुद्धि एवं अहंकारयुक्त, उत्सूत्र प्ररूपक श्री रत्न विजयजी एवं श्री धन विजयजीको परम हितस्वी ग्रन्थकार आचार्यप्रवर श्री आत्मानंदजी म.सा. परोपकारार्थ* पृ. १२० पर *लिखते हैं*- "थोडी सी जिंदगीवास्ते वृथा अभिमानपूर्ण होके, निःप्रयोजन तीन थुईका कदाग्रह पकडके श्री संघमें छेद-भेद करके काहेको महामोहनीय कर्मका उत्कृष्ट बंध बांधना चाहिए ?" - ग्रन्थकी समाप्ति करते हुए भी आशीर्वाद रूप लिखते हैं कि - "इस वास्ते रत्नविजयजी अरु धन विजयजी जेकर जैन शैली पाकर अपना आत्मोद्धार करनेके लिए जिज्ञासा रखनेवाले होवेंगे तो मेरेको हितेच्छु जानकर, और क्वचित् कटुक शब्दके लेख देखके, उनके पर हितबुद्धिवाले किंवा जेकर बहुत मानके अधीन रहा होवे तो मेरेको माफी बक्षिस करके मित्र भावसे इस पूर्वोक्त लेखको बांचकर शिष्ट पुरुषोंकी चाल चलकर धर्मरूप वृक्षका उन्मूलन करनेवाला ऐसा तीन थुइयोंका कदाग्रह छोडके किसी संयमी गुरुके पास चारित्र-उपसंपत् लेकर-शुद्ध प्ररूपक होकर, इस भारत खंडकी भूमिको पावन करेंगे तो इन दोनोंका शीघ्र ही कल्याण हो जावेगा, हमारा आशीर्वाद है।"

इसीके साथ पृ. १२१ पर उनके श्रावकोंकोभी-जिसे आत्म कल्याणकी वांछना है उन्हे-हितशिक्षा देते हुए, परभवमें उत्तम गति-कुल और बोधिबीजकी सामग्री प्राप्त करने हेतु मृगपाश

सदृश जैनाभासोंके विरुद्ध वचनकी-किसीके कहनेसे, देखनेसे या सराग दृष्टि आदि किसी भी कारणसे-श्रद्धा धारण की हुई हों उसे छोड़कर दृढ़ मनसे हज़ारों पूर्वाचार्यों द्वारा प्ररूपित और आचरणीय चार थुइयोको अंगीकार करनेकी प्रेरणा देते हैं।

निष्कर्ष-इस तरह इस ग्रन्थके अध्ययनसे हम अनुभव कर सकते हैं कि आचार्य प्रवरश्रीने अपने अत्यन्त विशद साहित्यावगाहनके स्वाद रूप संदर्भके थोकके थोक उंड़ेल कर एक अत्यन्त क्षुल्लक भासमान होनेवाली 'प्रतिक्रमणमें देव-देवीकी चतुर्थ थुईसे वंदना-स्तवना-करणीय है या नहीं?'-फिरभी जिन वचनसे विरुद्ध उत्सूत्र प्ररूपणाकी परंपरागत यथार्थता और सत्यताको किस अंदाज़से विश्लेषित करके अनेकोंको उन्मार्गगामी होनेसे बचा लिया है। अंतमे (गणिवर्य श्री मणिविजयजी म.) परोपकारी गुरु म. श्री बुद्धिविजयजी आदिकी प्रशस्ति रूप श्लोक और जिनाज्ञा विरुद्ध, कुछ अशुद्ध प्ररूपणाके लिए क्षमापना याचना करते हुए इस ग्रन्थके प्रथम भागकी परिसमाप्ति की गई है।

च.स्तु.नि. भाग-२:--*ग्रन्थ परिचय*--'चतुर्थ स्तुति निर्णय' ग्रन्थके प्रथम भागके सूत्र-शास्त्र-ग्रन्थादिके अनेक यथार्थ उद्धरणोंके स्वरूपको पढ़कर और श्री आत्मारामजी म. द्वारा उपकारार्थ दी गई हितशिक्षा, विद्वेषमें परिणत होनेसे क्रोधित होकर-सं.१२५०में उत्पन्न और थोड़े ही समयमें विच्छिन्न मिथ्यामत-तीन थुई-से चैत्यावंदनाका वि. १९२५में पुनरुद्धारक जिनाज्ञाभंजक, उत्कट कषायी, क्रोधी, मृषावादी, दंभी, ईर्ष्यालु, अन्यायी, साधुको कारणवश पत्र-लेखनकी जिनाज्ञा होनेपर भी उसे दोष माननेवाला कदाग्रही, जावराके नवाबसे वार्तालापमें-दीन (मुस्लिम) और जैन एक समान है-ऐसी प्ररूपणा करके जैनमत-अनंत तीर्थंकर-गणधरादिको मुस्लिम मत कर्ता सिद्ध करनेवाले स्वच्छंदमति अभिनिवेशिक मिथ्यादृष्टि, उत्सूत्र प्ररूपकादि अनेक अवगुणालंकृत-श्री धनपाल विजयजी द्वारा गप्प स्वरूप मृषालेखोंसे 'देखनेमें मोटी और जिनाज्ञानुसार खोटी; अनेक प्ररूपणाओंसे भरपूर, 'थोथी पोथी'में श्रीआत्मारामजी म.के साथ साथ खरतरगच्छीय, तपागच्छीय विजयदेवेन्द्रसूरि, सागरगच्छीय श्री रविसागरजी-श्री नेमसागरादि गच्छोंके अनेक पूर्वाचार्योंके दिये गये कलंकको असिद्ध प्रमाणित करने हेतु श्रीमगनलाल दलपतराम आदि अनेक श्रावक एवं साधुओंकी तथा जैनधर्म प्रचारक सभा-भावनगरके सभासदोंकी विनतीसे परोपकारार्थ व कलंक निवारण रूप इस द्वितीय भागकी रचना, प्रथम भागकी रचना पश्चात् चार वर्ष बाद-राधनपुरके वर्षावासमे श्री आत्मारामजी म सा.ने की; जिसमे राधनपुरके ज्ञानभंडारसे प्राप्त 'धर्मसंग्रह'-पुस्तकाधारित "चार थुई और नव प्रकारे चैत्यवदनाकी" प्ररूपणाको 'नूतन प्रक्षेपित होने'के आक्षेपका प्रत्युत्तर देते हुए मिथ्याभाषी धनविजयजीको अनादरपूर्वक दंड देनेका आग्रह करके श्री संघसे न्याय मागा है। तत्पश्चात् पृ ३४मे ऐसे प्ररूपकोंके लिए हार्दिक अफसोस भी व्यक्त किया है।

विषय निरुपण--उपरोक्त पूर्वाचार्योंके निंदक श्री धनविजयने, श्री रत्नविजयजी द्वारा की गई उत्सूत्र प्ररूपणाका--(प्रतिक्रमणके आद्यतमें जघन्य चैत्यवंदना करनी चाहिए, चतुर्थ स्तुतिसें

देव-देवी आदिकी स्तुति न करणीय है, न शास्त्रोक्त ही--- पुनरुच्चार करते हुए विशेषमें-(१) मयासागरजी द्वारा बिना योगोद्वहन-स्वयं दीक्षा ग्रहण (२) परिग्रहधारी और पीताम्बरधारीश्री मणिविजयजीकी बहुत पेढ़ियोंकी गुरु परंपरा संयम रहित थी, (३) बूटेरायजीने मणिविजयजीके पास न दीक्षा ली है-न उनमें साधुपना है (उनके स्वयं स्वीकारनेसे) (४) श्री आत्मारामजीने पुनः नवीन दीक्षा नहीं ली है और स्वयं (A) सूत्रागम, अर्थागम, पूर्वधरादिकी परंपरागत तीन थुई तथा पूजा प्रतिष्ठादि कारण चतुर्थ थुई की आचरणाको एकांत प्रतिक्रमणमे करना और श्री जिनमंदिरमें चैत्यवदनादिमें से निषेध किया है; (B) पीत वस्त्रकी परम्परा प्रारम्भ की (C) श्रावकके सामायिक धारण वक्त इरियावही प्रतिक्रमण बाद करेमिभंतेका पाठोच्चार-आदिकी प्ररूपणा करके परम्परा प्रारम्भ की है--आदि अनेक आक्षेप किये हैं। इनका इस द्वितीय विभागमें अनेक शास्त्रीय, युक्तियुक्त-आगमिक एवं प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे प्रत्युत्तर देकर पूर्वाचार्योंकी निर्दोषता, विद्वत्ता और गीतार्थताको प्रमाणित करनेकी भरसक कोशिश की है।

पृ. ३४में श्री आत्मारामजी पांच प्रकारके विरोधी है-जैनलिंग (वेश), शत्रुंजयादि तीर्थ, जैनशास्त्र, चतुर्विध संघ और पूर्वाचार्योंकी समाचारी। इनका प्रत्युत्तर (१) उत्तराध्ययनकी बृहत्वृत्ति अनुसार, (२) 'आर्य देश दर्पण'के संदर्भसे-(३) श्री जिनभद्रगणिजी कृत श्री संग्रहणीमें 'कोडि' शब्दकी प्ररूपणाका यथार्थ विश्लेषण करके (४) पृ. ४३में उद्धृत श्री प्रेमाभाईके पत्रोल्लेखसे और (५) पृ.४३-४४में की गई चर्चा-'इरियावहीका प्रतिक्रमण 'करेमिभंते'के पूर्व या पश्चात्--के निर्णयके लिए पृ.४५ पर श्री विजयसेन सूरि कृत 'सेन प्रश्न', श्रीरूपविजयजी कृत प्रश्नोत्तर, महानिशीथ, दसवैकालिक बृहत्वृत्ति, आदि ग्रन्थाधारित सिद्ध किया कि, प्रथम इरियावही और बादमें 'करेमि भंते' कहनेकी पूर्वाचार्योंकी परंपरा है और 'आवश्यक चूर्णि'की प्ररूपणाका यथार्थ विश्लेषण और अस्पष्टतादिके कारण 'प्रथम करेमि भंते'की प्ररूपणामें ही संदिग्धता है ऐसा प्रमाणित किया है।

अंतमें "आराधना पताका" सूत्रादिके संदर्भसे और रूपविजयीजी कृत प्रश्नोत्तर, प्रवचन सारोद्धार, अनुयोग द्वार, उत्तराध्ययन टीका, आवश्यक निर्युक्ति आदिसे श्रुतदेवी, क्षेत्रदेवता, भुवन देवतादिके काउसग्ग और थुइकी मान्यताकी सिद्धि की है; साथ ही रत्नविजयजीकी सुधर्मगच्छकी प्ररूपणाकी कपोल-कल्पितता और ऐसी प्ररूपणाके कारणोंको भी स्पष्ट किया है।

निष्कर्ष-इस ग्रन्थके दोनो भागोंकी विभिन्न समयमे रचना हुई है प्रथम भाग ई.स १८८७ और द्वितीय भाग ई स १८९१। इनमे जैन साधु-साध्वी योग्य प्रतिदिन अवश्य करणीय क्रियाकी विधियोमेसे एक 'चतुर्थस्तुति' और 'ईर्यापथिकी प्रतिक्रमण एव करेमिभते पाठोच्चारकी पूर्वापरता' विषयक विभिन्न मतोका आलेखन करते हुए दो विरोधी दलोके परस्पर खडन-मडनको पेश करके ग्रन्थकारने यथार्थ और सत्य प्ररूपणा करनेकी कोशिश की है। विरोधी दलको हितशिक्षा देकर हठाग्रह और कदाग्रह छोडकर सत्याग्रह अपनानेकी प्रेरणा दी है-जिससे आत्मकल्याण प्राप्त हो। अतमे गुर्वादिकी प्रशस्ति रूप श्लोकोसे अंतिम

मंगलाचरण करते हुए ग्रन्थका पर्यवसान किया गया है।

-: जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर :-

ग्रन्थ परिचय--इस ग्रन्थमे ग्रन्थकारने अपनी मौलिकताका परिचय देते हुए जैनधर्मके विभिन्न विषयक स्वरूपोंको प्रश्नोत्तर रूपमें प्रस्तुत किये हैं, जो आधुनिक शिक्षितो-जैन जैनेतर जिज्ञासुओंको संतुष्टि प्रदान करनेमें सक्षम है। इस पेशकशकी प्रमुख विशिष्टता है-"अभिप्सित तथ्योंको भ.महावीरके जीवनप्रसंगोंके साथ समरूप करके स्पष्ट रूपसे समझाना" यथा-(१) 'भ. महावीरका ब्राम्मण कुलमें अवतरण' इस प्रसंगसे जैन कर्मविज्ञानके अटल सिद्धान्त-*जीव कर्मका कर्ता और भोक्ता स्वयं है*---दर्शाया है; अर्थात् मरिचिके भवमें उपार्जित *'नीचगोत्र'* कर्म चरम भवमें भी भुगतना पडा। कर्मका फल सर्व जीवोके लिए समान होता है, निदान परमेश्वरको भीं उसके विपाकोदयको सहना पडता है। यही कारण है कि भ.महावीरको देवानंदाकी कुक्षिमें ८२ दिन तक रहना पडा। (२) गर्भहरण, छाद्मस्थिक कालमे परिषह और उपसर्गोको धैर्यता से सहना, निर्वाण समय शक्रेन्द्रकी 'एक पल आयुष्य वृद्धि' की प्रार्थनाका प्रत्युत्तर--आदि प्रसंगोसे अन्य दर्शनकारोंकी *सर्व शक्तिमान ईश्वरकी'* मान्यता पर कुठाराघात होकर प्रतिपादित होता है-- 'कर्मबद्ध जीव सर्व शक्तिसंपन्न नहीं हो सकता और सर्व कर्ममुक्त जीवोंको स्वयंकी शक्ति-प्रदर्शनकी आवश्यकता नहीं होती। अगर ऐसा होता तो इतने परिषह-उपसर्ग शक्ति होने पर भी क्यों सहते? अथवा देवलोकसे सीधे ही उच्च कुलमें अवतरित होनेके प्रत्युत नीच कुलमें क्यों जाते? क्योंकि बद्धकर्म भुगतानके लिए 'विहायोगति नामकर्म' उन्हें खिंचकर वहाँ ले गया!- ऐसे अनेक प्रसंग इन प्रश्नोत्तरोंमें निहित हैं।

विषय निरूपण--कुल १६३ प्रश्नोत्तरमें निम्नांकित विषयोंको समाविष्ट किया गया है।-यथा-जिनेश्वरका स्वरूप, योग्यता, गुण, कर्तव्य, जन्म, माता, पिता, कुल, गोत्र, विचरण क्षेत्रान्तर्गत जैन भूगोल-इतिहासादिकी मान्यतायें-भ. महावीरके जीवन प्रसंग---च्यवन, गर्भहरण, जन्म स्थान, समय, माता, पिता, परिवार, दीक्षा वर्णन, सार्ध बारह वर्षके छाद्मस्थिक आराधना कालके बाईस परिषह और त्रिविध उपसर्गोंका वर्णन, चरम सीमान्त सहनशीलताका परिचय, सर्वघातीकर्म क्षय होनेसे केवलज्ञान, केवलज्ञान महोत्सव, प्रथम देशना निष्फल, अनंतर देशनामें चतुर्विध संघकी स्थापना, चतुर्विध संघ परिवार, दीक्षा पर्यायके बयालीश चातुर्मास, बहत्तर वर्षायु पश्चात् निर्वाण, दिवाली पर्व प्रारम्भ, अंतिम उपदेशादि प्रसंगोंको लेकर अनेकविध विषयोकी प्ररूपणा ग्रन्थकारने की है जैसे-

सर्व तीर्थंकरोंके कर्मोदय एव कर्म-निर्जराका स्वरूप और भगवानके भोगी और त्यागीपनेका कारण-सार्ध बारह वर्षकी उग्रातिउग्र घोर तपश्चर्याका वर्णन-ज्ञानके भेदोपभेदका स्वरूप-बारह पर्षदाका वर्णन-इन्द्रभूति आदि महामिथ्याभिमानी ग्यारह महापंडित याज्ञिक ब्राह्मणोकी शकाओंका समाधान-गणधर पदप्रदान-त्रिपदीसे द्वादशांगीकी रचनान्तर्गत द्वादशांगी, चौदहपूर्व, पचांगी रूप पैंतालीस आगमोके परिचयात्मक यत्र-चतुर्विध सघ, साधु और श्रावक योग्य धर्म एव सम्यक्त्वका

स्वरूप-धर्माचरणका फल-पूर्वकालमें जिनोपदेश रूप श्रुतज्ञान कंठाग्र रखनेके आग्रहका कारण-(ग्रन्थालेखनके सर्वथा निषेधका इन्कार)-सर्वप्रथम श्रुतज्ञान ग्रन्थस्थ करनेकी परंपराके प्रारम्भक-समय, स्थान, कारण, विधि, व्यक्ति आदिके विधान---भ.महावीरके ३९ राजवी भक्तोके नाम-स्थान निर्देश---'निर्वाण समय भस्मग्रहके प्रभावसे', 'होनहार भवितव्यता'की सिद्धि और 'ईश्वरेच्छा बलियसि'की असिद्धि-निर्वाणकी परिभाषा और स्वरूप अंतर्गत जीवकी गति-स्थिति-अवस्था-मोक्षके प्रारम्भ-पर्यवसानके कालका स्वरूप, आत्माका अविनाशीत्व-अमरत्व आदि।

इसके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक, आगमिक एवं सैद्धान्तिक प्रश्नोत्तरके अंतर्गत भगवान श्री ऋषभदेवसे भ.महावीर पर्यंतकी पट्ट परंपराकी ऐतिहासिक सिद्धि---भ.पार्श्वनाथकी पट्ट परंपराकी पट्टावली और वर्तमानमें उनके उपकेशीय गच्छकी अविच्छिन्न परंपराके प्रभाविक आचार्यों-साधु आदिके विचरणसे भ.महावीरके पूर्वकालमे भी जैनधर्मके अस्तित्वकी सिद्धि-प्राचीन शिलालेखों एवं अनेक बौद्ध-शास्त्रोंसे तथा नूतन संशोधनाधारित जैनधर्मकी बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्मादिसे प्राचीनता और स्वतंत्रता---दिगम्बर देवसेनाचार्यजीके 'दर्शनसार' ग्रन्थाधारित बुद्धकी उत्पत्ति, मांस लोलुपता, मांसाहार और मांससे ही मृत्यकी प्ररूपणा; बौद्धोंके ग्रन्थोंसे ही बुद्धका चरित्र वर्णन और उनकी असर्वज्ञताकी सिद्धि-जैनमतसे बौद्धोंके धर्म स्वरूप-शास्त्रादिकी अधिकताका निषेध-श्वेताम्बरों और दिगम्बरोंकी पूर्वापरताकी; आचार्य परंपरा आदि ऐतिहासिक ग्रन्थ रचनायें, पाश्चात्य विद्वानोंके संशोधन, मथुराके प्राचीन शिलालेख, प्राचीन स्तंभादिके लेख, दैनिक पत्र-पत्रिकाके लेखादिसे सिद्धि---भगवंतकी देशनानुसार द्रव्य और भावसे प्रभु प्रतिमा-पूजनका स्वरूप-लाभ-कारण-सर्व देवोमें धार्मिकताका स्वरूप-समकित देवकी स्तुति और शासनोन्नति आदि विशेष कारणोमे श्रावक या साधु द्वारा आराधनाके निषेधका इन्कार-द्रव्य हिंसाका स्वरूप वर्णन, कूपके दृष्टान्तसे---आत्माका उपादान कारण ईश्वर एवं आत्मा और ईश्वरमें अद्वैतपनेका खंडन-कर्मफल प्रदाता और जगत्कर्ता ईश्वर प्ररूपणाका इन्कार और इन्कारके कारण,-पांच निमित्तरूप उपादान कारण ही सृष्टि-सर्जक और उनसे ही सृष्टि संचालन-इस विधानकी, बीजसेवृक्ष, और जीवका गर्भमें अवतरण आदि रूप कार्यकलापों द्वारा स्पष्टता-कर्म द्वारा ही विश्व रचनाकी सिद्धि-पुनर्जन्म, तीर्थंकरोंकी भक्तिका कारण और प्रभाव-शुभाशुभ कर्मोदयमे देवोका निमित्त रूप बननेकी शक्यता-जीवकी अनंत शक्तिकी कर्म रहितताके कारण अद्भूत, चमत्कारिक कार्य निष्पन्नता, कर्मकी १५८ उत्तर-प्रकृतियोका स्वरूप-और आठ मूल प्रकृतियोके कर्म-बंधका स्वरूप, कर्मबंधके कारण-कर्म निर्जराका स्वरूप आदि सर्वज्ञ प्ररूपित संक्षिप्त कर्म स्वरूप---२८ लब्धिका स्वरूप-उपयोग-प्राप्तिका स्वरूप---तीर्थंकरोकी लब्धियाँ-गणधर गौतमकी लब्धियोका वर्णन---भ महावीर और उनकी प्रतिमाकी मान्यताका कारण और स्वरूप एव अन्य सरागी देवोका स्वरूप---जैनोके ग्रन्थोकी सुरक्षा हेतु ज्ञान भडारोकी गुप्तता, लेकिन अध्ययन हेतु सर्वके लिए उदारता एव स्वतन्त्रता-जैनोके नाक एव जिह्वा-(इज्जत और खान पान)मे धन व्यय पर आक्रोश-सात क्षेत्रोमेसे आवश्यकतावाले क्षेत्रमे धन व्ययकी जिनाज्ञा-

साधर्मिक वात्सल्यका स्वरूप-जैनमतके कम प्रचार-प्रसारके कारण-अन्य मतावलम्बियोंमें प्राप्त पंच परमेष्ठिके स्वरूपकी मान्यताकी विवक्षा---अनादि अनंत द्रव्योंका स्वरूप--पृथ्वी आदि सर्व एक जीवाश्रयी (पर्यायरूप) अनित्य और असंख्य जीवाश्रयी (प्रवाह रूपसे) नित्य-रूप, उपदेश, क्रियादिकी अपेक्षा और धर्मोपदेशककी योग्यायोग्यतानुसार गुरुका स्वरूप वर्णन-धर्मके प्रकार-वनकी उपमासे (कंथेरी, खेजडी, जंगली, नृपवन और देवनन)-चेटक, संप्रति, कुमारपाल आदि सदृश राजा आदिभी गृहस्थ योग्य जैन धर्मपालन करनेमें समर्थ-कुमारपालके बारहव्रत पालन और नियमोंका स्वरूप और अंतमें ग्रन्थकारके अभिप्रायसे तत्कालीन हिन्दुस्तानमें प्रचलित पंथ या मतोंके क्रमका वर्णन किया गया है।

निष्कर्ष--इस प्रकार इस 'गागरमें सागर' जैसे छोटेसे ग्रन्थमें जैन-जैनेतर धर्मोंका स्वरूप, एवं कर्मादि सिद्धान्तोंकी प्ररूपणा, सर्व मतोत्पत्ति आदि द्वारा ऐतिहासिक तथ्योंका-आदि अनेक प्रकारसे बाल जीवोंकी जिज्ञासा पूर्ति हेतु निरूपण करके ग्रन्थकारने सामान्य जन जीवनमें व्याप्त अनेक भ्रामक मान्यता और जिज्ञासाकी पूर्तिका सफल प्रयत्न किया है।

-: चिकागो प्रश्नोत्तर :-

ग्रन्थ परिचय--किसी भी रचनाका प्रादुर्भाव तीन प्रकारसे होता है-अंतःस्फुरणा, प्रेरणा एवं आवश्यकता। 'चिकागो प्रश्नोत्तर' ग्रन्थकी रचना आवश्यकताको लेकर की गई है यथा-'(३-४-१८९३ चिकागो, यु.एस.ए.से. आये पत्रानुसार) **"At any rate, will you not able to prepare a paper which will convey to the accidental mind, a clear account of the Jain Faith which you so honorably represent ? It will give us great pleasure and promote the ends of the parliament, if you are able to render this service."**

यह और इसके बादके पत्रोंके प्रत्युत्तरमे पूज्य गुरुदेवने, अपने प्रतिनिधि स्वरूप मि. वीरचंद गांधीको चिकागो भेजनेके लिए तैयार किया, एवं उनकी तथा चिकागोवालोंकी प्रार्थनासे प्रश्नोत्तर रूप यह ग्रन्थ श्री महाराज साहिबने तैयार किया, जो मै अधुना अपने प्रेमी भाइयोंके लाभार्थ प्रगट करता हूँ। यही कारण है कि इसका नाम 'चिकागो प्रश्नोत्तर रखा गया'- 'उपोद्घात'-ले. श्री जसवंतराय जैनी।

विषय निरूपण-जैनधर्मका कर्मविज्ञान-आत्मा-मोक्ष, ईश्वरका स्वरूप, मनुष्य और ईश्वर एवं मनुष्य और धर्मके सम्बन्ध, धर्म पुरुषार्थ-धर्म हेतु-धर्माराधनाके प्रकार, सर्वोच्च पद प्राप्ति और उसके साधन, विभिन्न धर्मशास्त्रावलोकनका महत्त्व-जैनधर्मके उपकार, पुनर्जन्म सिद्धि-जगतकी विचित्रतायें मूर्तिपूजा (ईश्वरभक्ति)-उसकी आवश्यकता-स्वरूप, वर्तमानकालीन जैनोंमें न्यूनतायें और जैनधर्मकी सर्वांग सम्पूर्णता अंतर्गत पश्चात्ताप--(प्रायश्चित)से कर्मसे मुक्तिका स्वरूप-अवतारवादका विश्लेषण-धर्मका विविध विषयक शास्त्रोसे संबंध-धर्मसे ही देशोन्नति रूढि परंपरा पर असर आदिका विवरण देते हुए धर्मके लक्षणमे रत्नत्रयी और तत्त्वत्रयीके स्वरूपालेखन, 'जगत्कर्ता ईश्वर' संबंधी जैनेतर दार्शनिकोंकी मान्यतायें दर्शाकर और उनका खंडन करते हुए सर्वशक्तिमान-सर्वव्यापी-निराकार-एक ही परमब्रह्म-पारमार्थिक सृष्टि सर्जक

ईश्वरकी मान्यतासे ईश्वरको प्राप्त अनेक कलंकोंका ब्यौरा देकर 'ईश्वर फल प्रदाता'का भी इन्कार करते हुए स्व-स्व कर्मानुसार (काल-स्वाभाव-नियति-पूर्वकर्म-प्रयत्न) पांच निमित्त पाकर जीवका स्वयं कर्म फल भुगतना-स्पष्ट किया है। ईश्वर देहसे सर्वव्यापी नहीं- ज्ञानसे सर्वव्यापी (सर्वज्ञ) है। सृष्टि सर्जनके प्रमुख कारण-पांच निमित्त कारण और उपादान कारणोंका समवाय सम्बन्धसे मिलन है। पृथ्वी आदि उपादान कारण नित्य होते हैं, अतः वे अनादि अनंत होनेके कारण उनका कर्ता कोई नहीं हो सकता।

यहाँ अन्यवादियोंसे समन्वयकी भावना प्रदर्शित करते हुए आप लिखते हैं-"यदि पदार्थोंकी शक्तियोंका नाम ही ईश्वर है-ऐसा माना जाय तब ऐसे ईश्वरको जगत्कर्ता मानना जैन मतसे विरुद्ध नहीं। ....वर्तमान पदार्थविद्यानुकूल अन्य मतवालोंके ईश्वरको जगत्सृष्टा मानना अप्रमाणिक है। कोई विद्वज्जन 'पदार्थविद्यानुकूल जगत्कर्ता ईश्वर' जिस युक्ति द्वारा सिद्ध करेंगे सो युक्ति देखकर सत्यासत्यका विचार करके हमभी सत्यका निर्णय करलेंगे।" ---इस प्रकार ईश्वर विषयक दार्शनिकोंकी मान्यताकी भिन्नाभिन्नताको और वर्तमानकालीन ईश्वर विषयक प्ररूपणाओंका विवरण देते हुए मनुष्यका स्वभाव-लाक्षणिकता-न्यूनता आदिका विवेचन किया है। अंतमें कौनसे अठारह दूषणोंको दूर करके आत्मा-परमात्मा कैसे बनती है-इसे 'हीरा'के दृष्टान्तसे समझाया है। प्रवाहसे अनादि संसारका अंत नहीं। अनादिकालीन मोक्षगमन होने पर भी विश्व जीवोंसे शून्य न होनेका कारण जीवोंकी अनंतता दर्शाकर आकाशकी अनंततासे तुल्यता प्रस्तुत करके जैनमतकी विशिष्टताकी पुष्टि की है। इसके साथ ही पुनर्जन्म विषयक विशिष्ट सिद्धान्तोंका भी अनेक उदाहरणों द्वारा प्रतिपादन किया गया है।

सर्वज्ञ-केवलज्ञानीके ज्ञानमें प्रत्यक्ष और कार्यानुमानसे सत्य, मुख्य आठ और उत्तर प्रकृति १५८ (ज्ञानावारणीय-५, दर्शनावरणीय-९, वेदनीय-२, मोहनीय-२८, आयुष्य-४, नाम-१०३, गोत्र-२, अंतराय-५) कर्मानुसार ही चित्रविचित्र जीव जगतकी रचना होती है। ये कर्म कब और कैसे फल देते हैं इसका संक्षिप्त परिचय देते हुए; इन कर्म-धर्म-आत्मादिको न माननेवाले चार्वाकादि नास्तिक दर्शनोंका शास्त्राधारित अनेक युक्त युक्तियोंसे खंडन किया है। 'मूर्तिपूजा विरोधीओं द्वारा किया जाना पुस्तकादिका सन्मान, ताबूत, मक्का हजादिको भी 'स्थापना निक्षेपा' रूप मूर्तिपूजाका ही अंग सिद्ध किया है। मनुष्य और ईश्वरका, उपदेश्य और उपदेशक संबंध होनेसे, उन्हे परमोपकारी स्वरूप मानकर-उनके साक्षात्कारके लिए भी उनकी पूजाको आवश्यक-कर्तव्य दर्शाते हुए जलादि अष्ट प्रकार एव अन्य अनेक प्रकारके द्रव्योपचारसे द्रव्य-भावपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रादिसे धर्म-प्रभावना वृद्धिका स्वरूप अभिव्यक्त किया है। मनुष्यमे धर्म-धर्मीका अविष्वक्भाव संबध मिश्रीकी मिठास सदृश आरोपित करते हुए, ईश्वरके साथ भी उनका सन्मार्ग प्रदर्शक (रहनुमा)-दुर्गतिपात रक्षकके अतिरिक्त अन्य सबध अनुरूप होनेका ईन्कार-सकारण-किया गया है।

अंतमे धर्महेतु-धर्मपुरुषार्थको सूचित करके जैनधर्मानुसार धर्माराधनाके दो भेद-श्रावकधर्म

और साधुधर्मका विवरण-मार्गानुसारीके पैंतीस गुण-श्रावकके बारहव्रत-साधुके पंच महाव्रत-समभाव स्थिरता आदि सत्ताईस गुण-अठारह हजार शीलांगादिके पालनसे, दो प्रकारसे (सांसारिक और पारमार्थिक) मनुष्य जन्म साफल्यका एवं परंपरासे उच्चपद (मोक्षपद) प्राप्तिका आलेखन किया गया है। जैनेतर धर्मोंके उपकार, श्री तीर्थंकर परमात्माओंकी श्रेष्ठता प्रस्थापित करके भ.महावीर स्वामीका अत्यन्त संक्षिप्त जीवन-चरित्रका परिचय करवाकर, ईश्वरके अवतारवादके स्वरूपकी हास्यास्पदताको प्रकट किया है।

अनंत गुणी अरिहंत परमात्माके कुछ गुण और सिद्धपदके गुणानुवाद-जैन शास्त्रोंमें धर्मका परस्पर प्रेमसंबंध एवं पदार्थशास्त्र, शिल्प-साहित्य-दर्शन-जीवनशास्त्र (अर्थशास्त्र), सामाजिक (नीति) शास्त्र, वैदकशास्त्र, संगीतशास्त्रादिसे संबंध और सह अस्तित्व बताते हुए धर्मसे देशोन्नति और रूढ़ि परम्पराका त्याग करनेका महत्त्व फरमाया है। रत्नत्रयी और तत्त्वत्रयी रूप धर्मके लक्षण निरूपित करके ग्रन्थकी समाप्ति की गयी है।

निष्कर्ष-ग्रन्थकारके पूर्वरचित ग्रन्थोंके कुछ विषयोंमें पुनरावृत्ति रूप लगनेवाले इस ग्रन्थ के सर्व विषयोंमें विशिष्ट लाक्षणिकताका नियोजन स्पष्ट दृष्टिगत होता है, क्योंकि इस ग्रन्थकी रचनाका प्रयोजन ही विलक्षण संयोगोंका परिपाक है। अतः इस ग्रन्थमें "बिन्दुमें सिन्धु"की तासीर निहित करके ग्रन्थकारने तत्त्वाकांक्षियोंके लिए तत्त्वपूंजको जिज्ञासुओंके आधार स्तंभ रूपमें प्रस्तुत किया है।

-ः ईसाई मत समीक्षा ः-

ग्रन्थ परिचय--इस ग्रन्थ रचनाका आवश्यक प्रयोजन था-किसी स्वमत त्यागी ईसाईके "जैन मत परीक्षा" पुस्तककी प्ररूपणाओंका प्रत्युत्तर और ईसाई धर्मके भ्रामक-हास्यास्पद तथ्योंका उद्‌घाटन। 'जैनमत परीक्षा' पुस्तकानुसार जैनोंके ऋद्धिवंत, उच्च पदवीधारी, बुद्धिवान होना-सभीसे असत्य-स्वधर्म त्याग और शुद्ध-सत्य-जैनधर्म अंगीकार करनेकी प्रेरणा करना-वेदोक्त धर्मकी निंदा, कृष्णका नरकगमनादि प्ररूपणाओंका प्रत्युत्तर और ईसाई धर्मकी असमंजस, कपोल-कल्पित गप्प-तौरेत, जबूर इंजिल आदि धर्मग्रन्थोंकी आयातो, तौरेत यात्रा-गिनती-लयव्यवस्था, समुएल-ऐयुबादिकी पुस्तकोमें प्ररूपित अज्ञानी-दीन-परवश-कामी आदि पचासों अवगुणधारी ईश्वरकी कल्पना-अनेक मनघडंत कथायें-ईश्वरका सृष्टि सृजन-ईश्वर, परमेश्वर पुत्र इसु, आचार्य मुसा आदिकी प्ररूपणामें प्रयुक्त कुयुक्तियाँ और ईश्वरादिकी चित्र-विचित्र लीलाओका सविस्तीर्ण पृथक्करण करते हुए जैनोके सैद्धान्तिक थिअरी, सृष्टि संचालन, भौगोलिक, खगोलिक विवरणोको समाविष्ट किया गया है।

विषय निरूपण-ग्रन्थके प्रारम्भमे ही "जैन मत परीक्षा" के प्रत्युत्तरमे जैनधर्मकी विशिष्ट धर्माराधनासे कर्मक्षय और पुण्योदय होनेसे अनायास ही समकित प्राप्ति, विपुल धन-ऋद्धि-समृद्धिकी प्राप्ति होना; मोक्षमार्ग-शाश्वत, सपूर्ण सुख प्राप्तिके हेतुभूत उत्तम धर्मके अंगीकरणकी स्वाभाविक रूपमे प्रेरणा और उससे अनेक भव्यात्माओके आत्मकल्याण की सभवितता; हिंसक यज्ञोसे भरपूर वैदिक धर्मकी

निंदा-जो कोई भी दयावानके लिए कर्तव्य बन जाता है; और अन्य आत्म कल्याणकारी वैदिक प्ररूपणाओंका स्वीकार किया है। कृष्ण-नरकगमनके विषयमें जैनशास्त्रानुसार सार्ध छियासी हजार वर्ष पूर्व हुए कृष्ण वासुदेव-श्री नेमिनाथ भगवंतके चचेरे भाइ-का नरकगमन प्ररूपित किया है-नही कि हिंदू मान्य पांच हजार वर्ष पूर्व हुए कृष्णका। अगर हिंदू भी उन्हीं कृष्णको मानते हैं तो "कृतकर्म अवश्य भोक्तव्यं" अर्थात् राज्य संचालनमें अनेक आरम्भ-समारम्भ कामक्रिडायें, युद्धादि द्वारा उपार्जित कर्म भुगतनेके लिए नरकगमन हों-उसमें आश्चर्य या खेद क्यों? जैनोंने कृष्णजीको अपने अनागत चौबीसीके *'अमम'* नामक तीर्थंकरके स्वरूप माने हैं, फिर भी उनके कर्मानुसार नरकगमन रूप सच्चाई, जैसी जिंदादिलीसे स्वीकार्य कीया है, वैसे ही उनको भी स्वीकारना चाहिए; क्योंकि, *"सव्वे जीवा कम्मवश, चौदह राज भमंत"* यह अटल और अद्भूत जैन सिद्धान्त सनातन सत्यरूप है। यहाँ ग्रन्थकारने अपनी मध्यस्थताका परिचय देते हुए लिखा है, कि, "चाहो कोई पुरुष-स्त्री किसीभी जातिवाला क्यो न हो, जो ईच्छा निरोध पूर्वक शील पाले सो पुरुष श्रेष्ठगिना जाता है, ऐसे ऐसे लोक बहुत मतोमे, और बहुत जातियोंमे अवभी मिल सकते है।" इसके साथ ही साथ 'नार्हतः परमो देव'-तीर्थंकर समो देव नहीं और "श्री नमस्कार महामंत्रके प्रथम पांच पदके बिना अन्य कोई देव-गुरु उपास्य नहीं है।" इसे सिद्ध करके उनके गुणोंका जिक्र किया गया है।

तत्पश्चात् ईसा मसीहके जीवन चरित्रके प्रसंगोंका उल्लेख करके उनके देवत्वका भी इन्कार किया है-यथ गुलरसे फलयाचना-(दीनपना), बेगुनाह गुलरको शाप देना-(कषायीपना), भूतोंका सूअरोंके देहोमें प्रवेश करवाकर सूअरोंको समुद्रमें डूबा देना-(निर्दयता), ईसुका कुमारी मरीयमसे जन्म, ईसुका भक्तोंके लिए फांसी पर लटकना-(ईश्वरत्वका ह्रास), अंत समय 'एली एली'कहकर चिल्लाना-(शोक, भय, अरति), ईसुकी घोषणा-"हरएक मनुष्यको कर्मानुसार फल दिया जायेगा"- ईसाइयोकी 'ईश्वरकी प्रार्थनासे पापक्षम्य' होनेकी कल्पनाका निरसन आदिका वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त ईसाइ धर्मशास्त्रोमें सृष्टि सर्जनके साथ पुनर्जन्मका इन्कार एवं 'ईश्वरका सर्वको सुखी करनेके लिए जन्म देने'को माननेवालोंका भी प्रत्यक्ष व्यवहारमे दुःखी होनेका अनुभव और प्रलय वर्णन-धूर्त सर्प याने शेतान, आदम-हव्वा आदिके प्रपंच-उन दोनोंको मिथ्या मार्गदर्शन रूप ईश्वराज्ञा और उन दोनो द्वारा उसकी की गई अवहेलनाके फल स्वरूप ईश्वर द्वारा शाप देना-लूतकी बेटियोका मद्यपान और पिताके साथ कुकर्मसे गर्भधारण, वैसे ही सराका परमेश्वरसे गर्भित होना-ईश्वर पुत्र और आदमकी पुत्रियोका सम्बन्ध-आदमीको उत्पन्न करनेके लिए ईश्वरका पश्चात्ताप-प्रलय पूर्व एक ही नावमे सर्व प्रकारके प्राणी-पशु-पक्षी आदिके बीज रूप नर-मादा और उनके पोषणकी सामग्रीको भरनेका नूहको दिया गया ईश्वरका उपहासजनक आदेश-ईश्वरका कभी शाप देना और कभी उसके लिए पछताना कभी सबको मार डालना-मरी फैलाना-गाँव उलट देना और कभी किंसीको न मारनेका निश्चय करना-आदि अनेक असमजस मानस कल्पनाये प्ररूपित की हैं। "प्रत्येक जीता-चलता जंतु तुम्हारे भोजन

के लिए है । उसका मांस उसके जीव (लहु) के साथ मत खाना-"ऐसा ईश्वर द्वारा मांसाहारका आदेश और स्वय भी बछडे आदिका मांसाहार करना-(ईश्वर की क्रूरता और जिह्वा लोलुपता)- समस्त पृथ्वी पर एक ही बोलीको छिन्नभिन्न करना, बडे पयगम्बर अब्राहमकी पत्नीको स्वयंका जीव बचानेके लिए मृषा बोलनेकी प्रेरणा करना--(माया मृषावादीपना)-मिश्रवासीका गुप्त रूपसे खून करके जमीनमें गाडना--(खूनी होना), इसरायलियोको बचानेके लिए बडे मेम्नेका वध करवाके खूनके छापे मरवाना, मिश्रवासियोकी कत्ल और उसी इसरायलियोंको मरीका उपद्रव करके १७००० मनुष्योको मार डालना-पापके प्रायश्चित्तके लिए गाय-बैल बछडा-बकरा आदिके बलिदान देकर मास चढानेका विधान-आदि अनेक उटपटांग, निर्दयी, मृषावादी, हिंसक प्ररूपणा करनेवाले ईश्वर-ईश्वरपुत्र-पयगम्बर-मूसा आदिके चरित्र वर्णनोंसे ईसाइ धर्मकी अधर्मताका पर्दाफास किया है। और भव्य जीवोके उपकारार्थ सुदेव-गुरु-धर्मके गुणोंका वर्णन-हिंसासे बचनेके लिए आवश्यक, जीवोंके स्वरूपकी जानकारी देते हुए जीवोंके भेदोंका निरूपण, जीवोंकी शरीर रचना, सुख-दुःखादि अनुभव आदिके हेतुभूत निमित्त-कर्मोंका स्वरूप-कर्मके प्रकार-बंध, निर्जरा आदिके हेतु-विपाक आदि संपूर्ण फिरभी संक्षिप्त कर्मविज्ञान-चौदह पूर्वादि शास्त्र-रचनाका स्वरूप, सूर्य-चंद्रादिकी प्ररूपणासे खगोल और पृथ्वी याने द्वीप-समुद्रादिके विवरणसे भूगोलके विषयोंका स्पष्टीकरण-आदि अनेक उपयोगी निरूपणोंके साथ इस छोटेसे ग्रन्थकी समाप्ति की गई है।

निष्कर्ष--दिखनेमें छोटे और माहात्म्यमे बडे इस समीक्षात्मक ग्रन्थमें ईसाइयोंकी तौरेत-इंजिल-जबूरादिकी आयातोंके उद्धरण देकर उनकी समीक्षा करते हुए सत्य और शुद्ध धर्मावलम्बनसे आत्म कल्याणकी अपील करके जैनधर्मावलम्बी इतिहास, भूगोल, खगोल, कर्म विज्ञानादिकी भी प्ररूपणा की है।

-ः जैनधर्मका स्वरूप ः-

ग्रन्थ परिचय--जैनधर्मका स्वरूप अर्थात् उनके सिद्धान्त शास्त्रोंका अवगाहन-जो सिद्धान्त आसमान जैसे विशाल और समुद्र जैसे गंभीर है, जो अगणित (क्रोडो) ग्रन्थोमे समाविष्ट किया गया है, उन अगाध श्रुतवारिधिका आचमन करनेके लिए समर्थ तत्कालीन अगत्स्यके अवतार तुल्य अधिगततत्त्व, शास्त्र पारगामी श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.ने सर्वसाधारण जैन और जैनेत्तर सभीके लिए समान उपयोगी एव विशेषतःचिकागो 'धर्म समाजकी' प्रार्थना व प्रेरणासे आकाशको अणुमे समाविष्ट करने सदृश इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थकी रचना स १९५० अषाढ शु.१३को सम्पन्न की जिसे स १९६२ मे श्री जसवतराय जैन-लाहोर द्वारा प्रकाशित किया गया।

विषय निरूपण--आधुनिक अल्पज्ञ प्रत्युत धर्म जिज्ञासु महानुभावोकी सन्तुष्टिके लिए जैन धर्मके यत्र-तत्र निरूपित अनेक शास्त्रोमे की गई भिन्नभिन्न प्ररूपणाओमे निहित महत्त्वपूर्ण धर्म सिद्धान्तो तत्त्व पदार्थोंको सर्वांग सपूर्ण ज्ञान एक ही ग्रन्थमे अति सक्षिप्त रूपमे आलेखित करनेका प्रयत्न किया गया है जिसके अतर्गत निम्नांकित विषयोका जिक्र किया गया है-यथा-कालचक्र

उसके दो भाग और बारह आरे-उनका स्वरूप-उनमें तीर्थंकरोंकी उत्पत्तिका समय-तीर्थंकर आत्मा द्वारा पूर्व जन्म कृत बीस कृत्योके नाम-वर्णन; दो प्रकारका धर्म---श्रुतधर्म और चारित्र धर्म----श्रुतधर्मान्तर्गत नवतत्व, षट्द्रव्य, षट्काय, (इसके अन्तर्गत चार भूत या चार तत्त्वोंसे चैतन्योत्पत्तिकी मान्यताका खंडन, पांच निमित्तसे सृष्टि रचना, पृथ्वी आदिका प्रवाहसे नित्यत्व आदिकी स्वरूप चर्चा), चार-गतिका वर्णन, सिद्धशिलाका स्वरूप, आठ कर्मोंका स्वरूप, (देव-गुरु-धर्म, आत्मा-मोक्ष, जड़ चैतन्य, कर्म आदि विषयोमे) जैनोको सामान्य रूपसे स्वीकार्य मंतव्य और अस्वीकार्य मान्यतओका स्वरूप, आदिका वर्णन किया गया है। चारित्र धर्ममें साधु धर्मान्तर्गत संयमके सत्रहभेद, यतिधर्मके दस भेद, इत्यादि और गृहस्थ धर्मान्तर्गत अविरति सम्यग् दृष्टि गृहस्थका स्वरूप, उनको आचरणीय कृत्य, देशविरति श्रावकके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट-भेदोंका स्वरूप वर्णन, बारह व्रतोंका स्वरूप, गृहस्थके अहोरात्रके कृत्य, त्रिकाल पूजनविधि आदिको समाविष्ट किया गया है।

निष्कर्ष--"श्री आत्मानंदजी म.सा.के अगाध ज्ञानभंडारसे जैनधर्म तत्त्वोके स्वरूपका इस कदर इसमें गुंफन हुआ है कि इसे 'तत्त्वपुंज' कहा जायतो कोइ अत्युक्ति नहीं"-इस कथनको चरितार्थ करनेवाला यह ग्रन्थ जैनधर्म तत्त्वोंसे संपूर्ण अनजान-बाल जिज्ञासुओंके लिए अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके अध्ययनसे संपूर्ण जैनधर्मका सर्व साधारण परिचय हो सकता है।

- प्रश्नोत्तर संग्रह -

ग्रन्थ परिचय--श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. द्वारा भारत देशके तत्कालीन जैन-जैनेतर समाजपर किये गये उपकारोके कारण उनकी कीर्तिपताका दिगंतव्यापी बन चूकी थी। अमरिका जैसे दूर देशोमेंभी आपकी सम्माननीय प्रतिभापूर्ण प्राज्ञताके प्रकाशकी प्रभा प्रसरी हुई थी, परिणामतः सर्व धर्म परिषद, चिकागो द्वारा श्री आप आमंत्रित किये गये थे। वैसे ही योरपीय विद्वान प्रो.डॉ.रुडोल्फ हॉर्नलेका दृष्टि व्याप आप तक विस्तीर्ण बना और उन्होंने भी स्वयंके 'उपासक दशांग' आगम-सूत्रके अनुवाद और संशोधित विवेचनमें उपस्थित होनेवाली कुछ शंकाओंका समाधान प्रश्नोत्तर द्वारा आपसे प्राप्त करके कृतज्ञता अनुभूत की थी। उन प्रश्नोत्तरको समाजोपयोगी बनाने हेतु 'जैनप्रकाश' भावनगर, पत्रिकामें, पुस्तक ५-६के अकोमे प्रकाशित किया गया था; जिसे पू.प्रवर्तक श्री कान्तिविजयजी म.साके शिष्य रत्न पू. श्री भक्तिविजयजी म. द्वारा संकलित करके श्री जैन आत्मवीर सभा, भावनगर-द्वारा वि.स. १९७२मे 'प्रश्नोत्तर सग्रह' नामक पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। यह ग्रन्थ आचार्य प्रवरश्रीके पत्र साहित्य'का उत्तम सकलन बन पडा है।

विषय निरूपण-इस सकलनमे डो.होर्नले द्वारा बारह पत्रोमे प्रश्न पूछे गये और विद्वद्वर्य आचार्य-देव द्वारा उन प्रत्येक प्रश्नोके सतोषप्रद, पूर्वाचार्योंके शास्त्र-ग्रन्थाधारित शुद्ध प्रत्युत्तर दिये गये। उन प्रश्नो द्वारा जिन जिन विषयोको समावृत किया गया है वे प्राय इस प्रकार है-श्रावककी ग्यारह पडिमाओकी गाथा अर्थ और वहन करनेकी प्रक्रियाका स्वरूप ओहीनाण-

पौषध-'व्रजऋषभनाराच संघयण-आदिके अर्थ और स्वरूप, परिषह और उपसर्ग दोनोंके स्वरूप-प्रकार परिभाषा एवं दोनोंमें अंतर, भ.महावीरका प्रणीत भूमिमें विचरणकाल, उग्रकुल और भोगकुल; अणुव्रत-गुणव्रत एवं शिक्षाव्रत; कायोत्सर्गकी मुद्रा आदिका शास्त्रीय स्वरूप; श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों शाखाओंकी उत्पत्तिका समय स्वरूप और उन पर प्रो. जेकोबीके अभिप्रायकी समीक्षा, जैनोंकी पूर्वांकित दोनों शाखाओंके आगमान्तर्गत बारह अंग विषयक अभिप्राय-ग्रन्थकारके 'अज्ञान तिमिर भास्कर' ग्रन्थ विषयक डॉ.रुडोल्फकी कुछ शंकाओंके प्रत्युत्तरके अंतर्गत भद्रबाहु स्वामीजीके निर्वाणका निश्चित समय, तेईस उदयोंका स्वरूप, योरप और अमरिकामें जैनोंके छपे हुए सूत्रों की सूचि-संभूति विजयजी और भद्रबाहुजीकी शिष्य परंपराका विस्तृत वर्णन-संभूतिविजयजीके नंदनभद्रकी शिष्य परंपरासे दिगम्बर मतके प्रारंभके निरूपणकी दिगम्बर और श्वेताम्बर पट्टावलीके प्रमाणोंसे सिद्धि-आचाम्ल (आयंबिल) तपका स्वरूप और परिभाषा-वृद्धगणेश (सर्वगणियोमें बड़े), बीस विश्वोपक, पट्ट महोत्सव, सप्तक्षेत्र, शंत्रुजय उद्धार विषयक 'श्री आदिनाथस्य षष्ठोद्धारस्य' आदि शब्दोंके अर्थ और स्वरूप; 'जैनमत वृक्ष' ग्रन्थाधारित प्रश्नोत्तरान्तर्गत उस चित्रांकनमें मध्य थड़ रूप तपागच्छको रखनेका कारण-सुधर्मा स्वामीसे वर्तमान तपागच्छ पर्यंत पट्ट परंपराके मुख्य तथ्य एवं स्वरूप-निर्ग्रंथ गच्छके क्रमसे परिवर्तीत छ नाम और परिवर्तनके कारण-छठे नाम तपगच्छका स्वरूप-भ. पार्श्वनाथकी पट्ट-परंपरा और उनके वर्तमान गच्छ भेदोंका स्वरूप-विच्छेद हुए गच्छोंका विधान साधुकी दस सामाचारीके अर्थ और स्वरूप,-'मिच्छाकार'समाचारीका विशेष स्वरूप-पट्टावली संबंधित अन्य अनेक शंकायें-गच्छ, कुल, शाखा, गण आदिके अर्थ और स्वरूप,-'आचार दिनकर' नामक ग्रन्थसे चार आर्यवेदकी प्रमाणिकता-दिगम्बराचार्य कृत 'ज्ञान सूर्योदय' नाटकाधारित बौद्ध मतोत्पत्ति, दिगंबरोंकी बीस पंथी-तेरापंथी तोतापंथी शाखायें, चार प्रकारके संघ आदिका स्वरूप-वल्लभीनगर भंगके समय गांधर्व वादिवैताल शांतिसूरिजी द्वारा श्री संघ और शासन रक्षाका स्वरूप-चंद्रकुलसे थेरापद्रिय गच्छकी उत्पत्ति आदि अनेक विषयोंकी शंकायें-अस्पष्टतायें-असमंजसता आदिके संतोष जन्य-यथास्थित संदर्भ सहित सर्वांग संपूर्ण प्रत्युत्तरसे उन विदेशी विद्वानका दिल जीत लिया। जिससे प्रभावित होकर उन्होंने अत्यन्त आदर भावसे उपकार अदा करने हेतु प्रशंसा पुष्पयुक्त (श्लोक द्वारा) अपने ग्रन्थको समर्पित किया--श्री आचार्य प्रवरके नाम।

निष्कर्ष--श्री मगनलाल दलपतरामजीके माध्यमसे किये गये आचार्य देवके इन महत्वपूर्ण पत्र व्यवहारसे परवर्ती अनेक अभ्यासक जिज्ञासुओकी शका-समस्याओंका समाधान स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। साथ ही ग्रन्थकारकी अनेक रचनाओंका अभिप्रेत स्वयं उनकी कलमसे ही स्पष्ट हो जाता है और कुछ नवीन तथ्योका उद्घाटन भी यहाँ हुआ है। इस ग्रंथ संकलना के अभ्याससे सुरीश्वरजीके दिलमें बहती ज्ञान और ज्ञानीके प्रति सम्माननीय लागणीशीलताका एहसास होता है, जो उन्हे नम्र-सच्चे ज्ञानीके रूपमे हमारे सामने प्रत्यक्ष करती है।

--- नवतत्त्व (संक्षिप्त्) ---

बृहत् नवतत्त्वका ही संक्षिप्त रेखाचित्र इसमें दर्शित करवाया गया है। इन सारभुत रहस्योंको बिना किसी संदर्भ, अत्यन्त सरल भाषामें-- बाल जीवोकी अभिज्ञता हेतु-- प्रस्तुत किया गया है; जिसे पढ़कर जैन-जैनेतर सभीको इनकी जानकारी मिल सकती है।

--- पद्य रचनायें ---

विशाल साहित्य सृजनकर्ता विद्वद्वर्य आचार्य प्रवरश्रीने अपनी लेखिनीसे सुंदर भाववाही, कलात्मक, आत्म कल्याणकारी, आत्म हितकारी, आत्मोपकारी मनमोहक लुभावने पद्य साहित्यको भी अवतारा हैं, जिसमें विविध पूजा-काव्य, पद संग्रह, स्तवन और सज्झाय संग्रह, मुक्तक एवं उपदेशात्मक फुटकल रचनायें, 'उपदेश बावनी', 'ध्यानशतक' ग्रन्थाधारित भावानुवाद (संवर तत्त्व अंतर्गत) आदि प्रमुख रूपसे दृष्टिगत होती हैं। इन सभीका विशिष्ट परिचय 'पर्व षष्ठम्'में करवाया जायेगा।

सारांश---पूर्वांकित सर्व गद्य साहित्यके विश्लेषणात्मक विवरण द्वारा ग्रन्थकारकी जन समाजके प्रति हितार्थ एवं परोपकारार्थ दृष्टिका परिचय प्राप्त होता है। कहीं कहीं विषयोंके समान शीर्षक नज़र आते हैं, अतः पुनरावृत्तिके दोषकी झलक महसूस होती है; लेकिन, जब उनका अध्ययन किया जाता है तब हमारा भ्रम खुल जाता है। क्योंकि प्रत्येक बार उसी एक विषयको उन्होंने नये नये संदर्भोंमें विविध आयामोंके साथ पेश किया है-- जो उनकी तीव्रतम प्रातिभ मेधाका ज्वलंत उदाहरण रूप है। उनके गद्य ग्रन्थोंको हम जैन-धर्म-तत्त्वपूंज कह सकते हैं तो पद्य-ग्रन्थो एवं संग्रहोंको शांतरससे लसलसता भक्तिरस भरपूर निर्मल निर्झरोंका अक्षय कोश कहेंगें।